भारतीय साहित्य में भक्ति-काव्य की विशिष्ट भूमिका रही है। भारत जैसे महान् एवं शान्तिप्रिय देश में धार्मिक समन्वय तथा विभिन्न धर्म-दर्शनों के बीच संवाद और समीकरण की जहाँ बहुत आवश्यकता रही वहाँ इनके बीच परस्पर विश्वास और सामंजस्य पर भी अत्यधिक ज़ोर दिया गया।

शताब्दियों से कश्मीर ने कई दर्शनों और धर्मों को अपनी सुरम्य वादी में संरक्षण प्रदान किया। भक्त कवियों, शैव-साधकों, तांत्रिकों तथा सूफ़ियों ने यहाँ अपनी वाणियों और रचनाओं द्वारा सर्वधर्म सद्भाव के प्रसार-प्रचार में सराहनीय कार्य किया। इसी महान् परम्परा में **कृष्ण राज़दान** (1850-1926) का नाम ससम्मान लिया जा सकता है। अनन्य शिव-भक्त होते हुए भी उन्होंने जहाँ अपने आराध्य की स्तुति में अनगिनत गीत रचे वहाँ पूर्णावतार श्रीकृष्ण की रासलीलाओं को भी गीत-बद्ध करते हुए अपने कविकर्म को सफल और सार्थक किया। उन्होंने लीला-विधा जैसे अनूठे विषय को आकर्षक शैली, मनोहारी शब्दन्यास और सुललित छन्दों में केवल निबद्ध ही नहीं किया अपितु उसमें कश्मीर की उन्मुक्त रूपच्छटा और निसर्ग में व्यक्त निष्काम भक्ति-भाव को भी छंद-मुखर किया है। उनकी रचनाओं में उन प्राचीन नदियों, वनों, पर्वतों, तीर्थ-स्थलों आदि का बार-बार उल्लेख आया है, जो भारतीय जन-मानस में सदियों से विद्यमान हैं।

प्रस्तुत विनिबंध के लेखक **अर्जुन देव मजबूर** ने परम्परागत भारतीय दृष्टि, मनीषा और शान्ति तथा सहिष्णुता के क्षेत्र में कृष्ण राज़दान के कृतित्व एवं उनके योगदान की विशेष चर्चा की है। यह विनिबंध साम्प्रदायिक सद्भाव और शाश्वत मानव मूल्यों को सुरक्षित और संवर्धित करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण पहल करेगा, ऐसी आशा की जा सकती है।

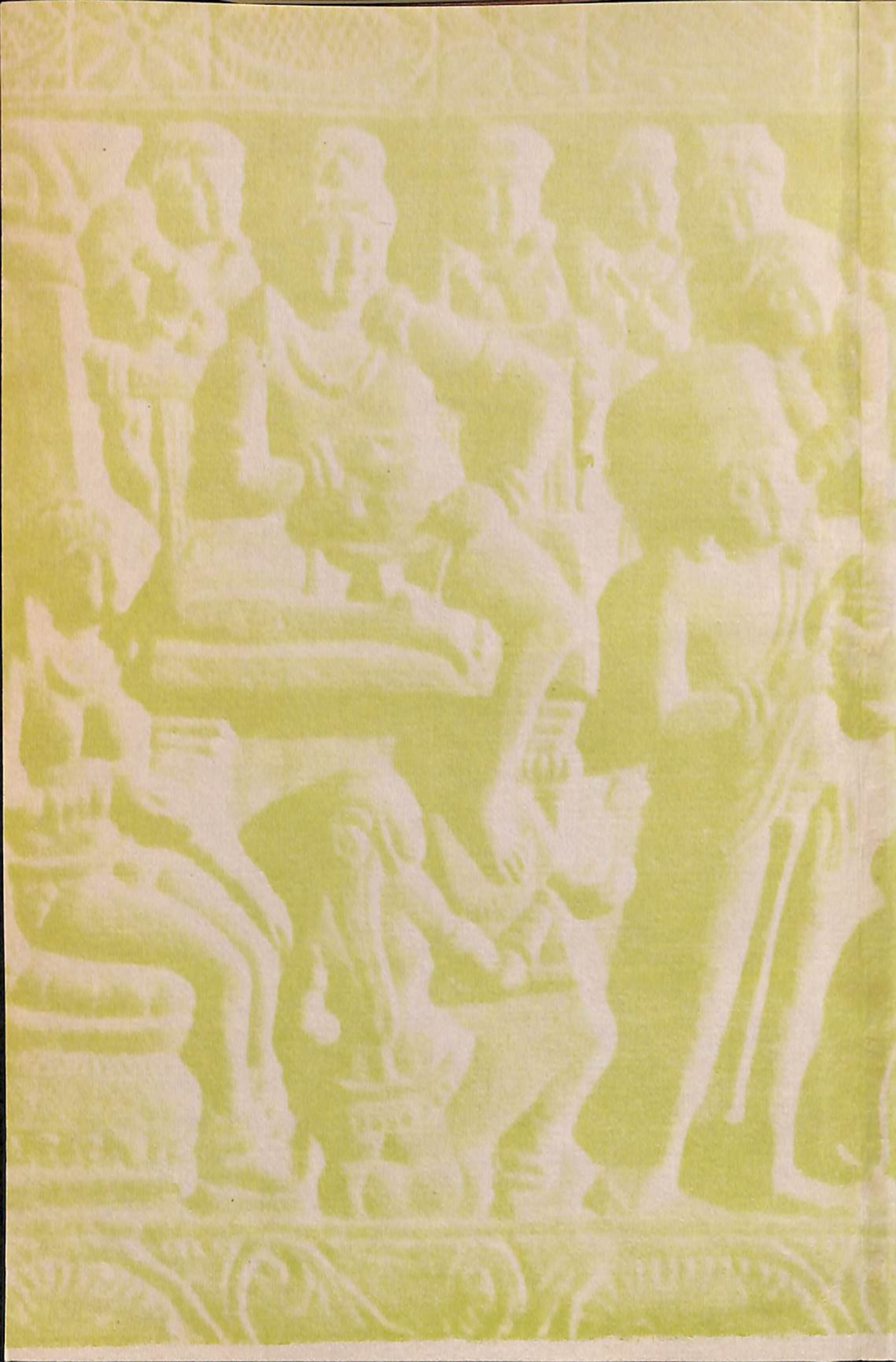
SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15-00

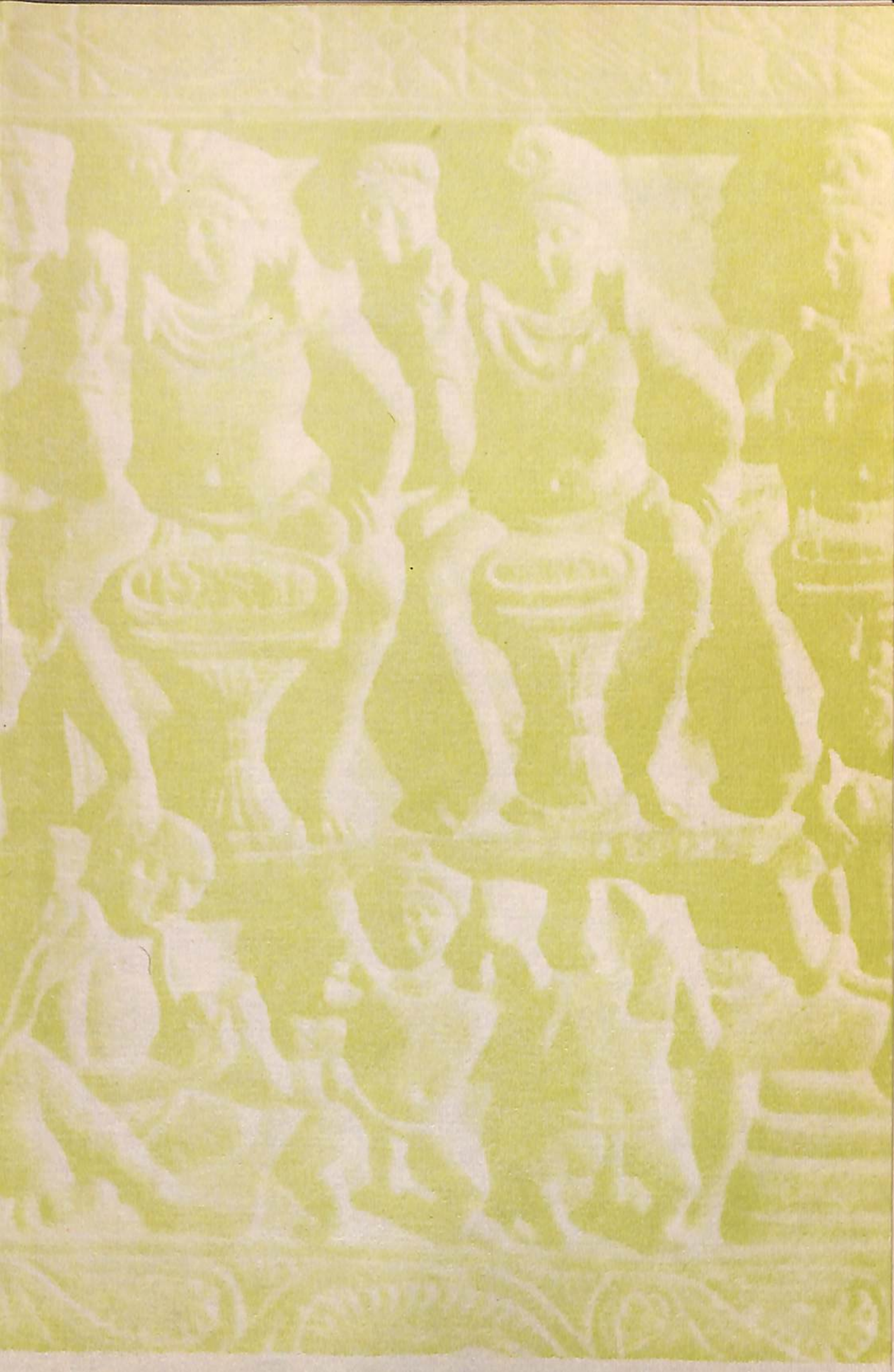
कृष्ण राज़दान

अर्जुन देव मजबूर



भारतीय
साहित्य के
निर्माता





कृष्ण राज़दान

प्रस्तर पर मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य है, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं। उनके नीचे बैठा है मुंशी जो व्याख्या का दस्तावेज़ लिख रहा है। भारत में लेखन-कला का यह संभवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख है।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई०
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

कृष्ण राज़दान

अर्जुनदेव मजबूर

साहित्य अकादेमी

Krishna Razdan : A monograph in Hindi by Arjun Dev Majboor on the Modern Kashmiri poet. Sahitya Akademi, New Delhi (1991)

प्रथम संस्करण : 1991

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नयी दिल्ली 110 001
विक्रय विभाग : 'स्वाति', मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय

जीवन तारा बिल्डिंग, चौथा तल, 23 ए/44 एक्स, डायमण्ड हार्बर रोड, कलकत्ता 700 053
29, एलडाम्स रोड, तेनामपेट, मद्रास 600 018
172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई 400 014

मूल्य

मुद्रक

भारती प्रिण्टर्स
दिल्ली 110032

अनुक्रम

सम्पूर्ण विश्व है जिसका काव्य

कश्मीर की रमणीक वसुन्धरा, जहाँ एक ओर प्रकृति उन्मुक्त रूप-सज्जा की जननी है तो दूसरी ओर दर्शन और साहित्य की उन्नत पीठिका भी है। शारदा प्रदेश नाम का यह मनोरम क्षेत्र कई उत्तम संस्कृतियों का संगम रहा है।

अनुभवों की एकीकृत चेतना से जो सत्य जन्म लेता है, दर्शन कहलाता है। जब गहरे मनन द्वारा एक विचारक इस सत्य को सूत्रबद्ध करता है तो जीवन तथा विश्व की गूढ़ पहेलियों को समझने के लिए कई पीढ़ियाँ इसका उपयोग करती हैं। दर्शन जितना महान हो उसमें स्थिर रहने और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों को प्रभावित करने की उतनी ही क्षमता रहती है।

कश्मीर में मुख्य रूप से जिन दर्शनों की अभिवृद्धि हुई, उनमें तन्त्र अथवा शाक्त, बौद्ध और शैव दर्शन आते हैं।

विश्व की उत्पत्ति, जीवन के आरम्भ, इसके अन्तिम ध्येय तथा मृत्यु आदि प्रश्नों के सम्बन्ध में भारतीय दार्शनिकों ने विभिन्न मननशील ग्रन्थों द्वारा दार्शनिक तथ्य प्रस्तुत किये हैं। चार्वाकों ने पुनर्जन्म को मिथ्या सिद्ध करके नास्तिक अवधारणा का प्रतिपादन किया। वैष्णवों ने मानव का अन्तिम उद्देश्य बैकुण्ठ धाम को प्राप्त करना बतलाया। न्यायवेत्ताओं ने अपने ढंग से जगत की व्याख्या की। सांख्यकार ने प्रकृति के विभिन्न तत्त्वों को खोजने का प्रयास किया। योग दर्शन ने उन सीढ़ियों को चिह्नित किया जिनके द्वारा एक योगी ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। वेदान्तियों ने जगत-मिथ्यावाद को अंगीकार किया।

जब शैव दर्शन के समक्ष उपर्युक्त गम्भीर प्रश्न उपस्थित हुए तो उसने कहा कि यह विश्व शिव का एक अचम्भे में डालनेवाला विचित्र और असीमित खेल है। वही सारी शक्ति का केन्द्र है। वही अपने स्वभाव से हमेशा सम्बद्ध रहता है और विकास की इस लीला की कल्पना करता है। अनेक आत्माओं और विश्वों की उत्पत्ति, संरक्षण, संयोग, अन्धकार प्रक्रिया और प्रकाशन का कर्म उसी महा-

शक्ति में हो रहा है। एक जीवात्मा, शिव के अन्धकार में आने का मायावी स्वरूप है। इसी शक्ति द्वारा जब एक भक्त पर शक्तिपात होता है तो वह 'शिवयोग' में दीक्षित होकर अपने को शिवमय बनाकर अन्तिम लक्ष्य प्राप्त करता है।

शैव दर्शन के दो सम्प्रदाय हैं। एक दक्षिण भारत का द्वैतवादी और दूसरा कश्मीर का शिवाद्वैतवाद। यहाँ हम संक्षेप में कश्मीर शैव दर्शन के सिद्धान्तों पर विचार करेंगे। यह दर्शन भारतीय संस्कृति को कश्मीर की अनुपम देन है। हिमालय क्षेत्र में कैलाश पर्वत के समीप चौथी शती ईस्वी में इसका प्रादुर्भाव हुआ। इसका सम्बन्ध त्र्यम्बक सम्प्रदाय से है। त्र्यम्बक सुप्रसिद्ध ऋषि दुर्वासा के शिष्य थे। कश्मीर के सुप्रसिद्ध शैवाचार्य सोमानन्द ने इस दर्शन पर 'शिव-दृष्टि' नाम की दार्शनिक कृति की रचना की। इसी शृंखला में सोमानन्द के सुयोग्य शिष्य और दार्शनिक उत्पलदेव ने 'ईश्वर प्रतिभिज्ञा' का प्रतिपादन किया।

दसवीं शताब्दी के अंत तथा ग्यारहवीं शती के आरम्भ में उत्पलदेव के महान शिष्य अभिनवगुप्त आचार्य ने कश्मीर शैव मत के 'त्रिक्' सिद्धान्त की व्याख्या 'तन्त्रालोक' द्वारा की। अभिनवगुप्त ने अपनी दार्शनिक कृतियों द्वारा पर्याप्त ख्याति अर्जित की। संस्कृत भाषा में लिखित अपनी रचनाओं 'तन्त्र सार' और 'परा-त्रिशिका विवरण' में उन्होंने प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं के कई पद्य और गद्यांश दिये हैं। इनके बारे में कहा जाता है कि वे अपने बारह सौ शिष्यों समेत एक गुफा में प्रविष्ट होकर अन्तर्धान हुए। तेरहवीं शती ई. में शितकण्ठ ने 'महानय प्रकाश' में उस समय की प्रचलित कश्मीरी भाषा में इस दर्शन की अभिव्यक्ति की।

शैव दर्शन के अनुसार जगत माया नहीं, एक सत्य है। पूर्ण सत्य भी नहीं; क्योंकि यह एक रचना है, जो परम सत्य में पवित्र और सीमा-रहित विमर्श रूप में विद्यमान है। विमर्श जो परम शिव कहलाता है, वह सर्वदा कम्पायमान (in Vibration) है। उसके इस स्वभाव को 'स्पन्द' कहते हैं। गोचर विश्व, जो विमर्श (Conciousness) रूप में परम शिव में विद्यमान है, अपने स्वरूप में, क्रम से, एक आईने में प्रतिबिम्ब के समान आता है। किन्तु विमर्श के आईने में शिव की अपनी ही शक्तियाँ प्रतिबिम्बित होती हैं।

शिवत्व का प्रकाशन रूप शक्ति है। शिव और शक्ति एक ही स्वतन्त्र, सर्व-शक्तिमान और पूर्ण सत्य के मात्र दो रूप हैं।

कश्मीर शैव दर्शन में जाति, धर्म अथवा लिंग के आधार पर कोई निरोध स्वीकार्य नहीं। कोई भी श्रद्धालु, जिज्ञासु सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक रूप से इसमें प्रवेश पा सकता है। यह दर्शन पुस्तक ज्ञान की अपेक्षा अभ्यास पर अधिक बल देता है।

व्यावहारिक रूप से इस दर्शन में साधुओं का व्यवसाय धारण करने की कोई आवश्यकता नहीं। एक गृहस्थ शिव-योग द्वारा अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकता है।

इसके लिए उसे घर कुटुम्ब त्यागने की कोई आवश्यकता नहीं। साधुओं के चिह्न यथा श्वेत या गेरुए वस्त्र धारण करना, उलझे बाल रखना तथा राख मलना आदि इस शास्त्र के सिद्धान्तों में सम्मिलित नहीं। इस शास्त्र में भावनाओं और प्रवृत्तियों का दमन न करते हुए इनके शोधन (Sublimation) पर बल दिया गया है। इस प्रकार यह दर्शन भुक्ति और मुक्ति दोनों को साथ-साथ अग्रसर करता है।

भक्ति पर बल देने, जाति भेद से दूर रहने और सांसारिक जीवन का निषेध न करने के कारण इसका प्रसार भारत और भारत से बाहर के देशों में भी हुआ है।

इस दर्शन को त्रिक् सिद्धान्त की देन आचार्य अभिनवगुप्त ने दी। त्रिक् सिद्धान्त के सम्बन्ध में कहा गया है :

वेदाच्छैवं, ततो वामं ततो दक्षः ततः कुलम्।
ततो मतं ततश्चापि त्रिकम् सर्वोत्तमं परम्॥

(परात्रिंशिका विवरण, पृ. 92)

अर्थात् वेदाचार से शैवाचार, उससे वामाचार तब दक्षिणाचार फिर कुलाचार तत्पश्चात् मताचार और उससे भी बढ़कर त्रिकाकार का स्थान है।

त्रिक् का सीधा अर्थ है तीन का समूह। यह पद्धति सिद्धान्त-तन्त्र, मालिनी-तन्त्र और नामक-तन्त्र पर आधारित है। यह पद्धति एक ऐसे योग की शिक्षा देती है जो तीन भागों में विश्लेषित की गयी है अर्थात्—शाम्भव, शाक्त और अन्वय। इसके अनुसार 'शक्ति' वह मार्ग है जिसके द्वारा शिव आत्मा और विश्व की दशा में आता है। इसी शक्ति द्वारा जीव अपने स्वरूप, विश्व और शिव को जान लेता है। इन तीनों को शिव, शक्ति और नर की संज्ञा दी गयी है।

'त्रिक्' कोई सीमित धार्मिक विधान या रस्मों और रिवाजों का समूह नहीं। यह एक दृष्टिकोण है। यह ससीम और असीम; एकत्व और प्रभुत्व को एक ही दृष्टि से देखने का तरीक़ा है। इसीलिए इसमें जाति का बड़ा या छोटा होना अंगीकार नहीं किया गया है। इस शास्त्र में खानपान की भी कोई पाबन्दी नहीं। इस सम्बन्ध में अभिनवगुप्त कहते हैं :

"खाना शरीर की पुष्टि का साधन है। आत्मा इससे अलग है। अतः उस पर खाने का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। मकान चाहे किसी भी ईंट-गारे से बनाया जाये, हमें उसमें रहनेवाला अभिप्रेत है, वही आत्मा है।"

इच्छा, ज्ञान और क्रिया इस दर्शन का व्यावहारिक मार्ग परिलक्षित करते हैं। त्रिक्-योग ध्यान और समाधि की अपेक्षा 'समावेश' को ऊँचा महत्त्व देता है। 'समावेश' एक प्रकार से सम्बद्ध विमर्श को पूर्ण विमर्श (Absolute concious-ness) में विलीन करना है। त्रिक् पद्धति का सबसे ऊँचा मार्ग शाम्भव-योग है।

इसे इच्छायोग, निर्विकल्प-योग तथा अभेदोपाय भी कहा गया है। शाम्भव-योग अभ्यास की वह दशा है जिसमें मस्तिष्क द्वारा होनेवाले सभी कर्म रुक जाते हैं और चित् बिना विचारों की व्याकुलता के प्रकाशित होता है। यही वह अवस्था है जहाँ भटके हुए प्रकाश का सनातन प्रकाश में विलय हो जाता है।

यहाँ इस बात का स्पष्टीकरण आवश्यक है कि जिस कृष्ण राज़दान के व्यक्तित्व तथा काव्य पर आनेवाले अध्यायों में विचार किया जायेगा, वे मुख्यतया निर्गुण शिव के नहीं अपितु सगुण शिव के अनन्य उपासक थे। और इसी पृष्ठभूमि में उन्होंने अपनी काव्यकला को विकसित किया।

डॉ. केदारनाथ शर्मा के अनुसार शैव-दर्शन में मोक्ष प्राप्ति के अन्यान्य साधनों में से भक्ति भी एक साधन के रूप में स्वीकृत है। 'स्तवचिन्तामणि' में कहा गया है :

व्यतीतगुणयोगस्य मुख्यधेयस्य धूर्जटेः।
नमापि ध्यायतां ध्यानै किमन्यालम्बनै फलम्॥

—**स्तवचिन्तामणि**, श्लोक 19, पृ. 28

अर्थात् गुणातीत शिव की प्राप्ति के लिए जिसे भक्ति रूपी मूल साधन उपलब्ध हो, उसके लिए अन्य साधन निष्प्रयोजन हो जाते हैं। इस प्रकार के कई उदाहरण दर्शन-ग्रन्थों में मिलते हैं, जहाँ भक्ति द्वारा मोक्ष-प्राप्ति का प्रतिपादन हुआ है। इस बात में संदेह नहीं कि कश्मीर के शैवाचार्यों ने दास्य-भक्ति का प्रतिपादन किया है किन्तु शैव साधना में ज्ञान और भक्ति का मंजुल सामंजस्य है। यहाँ भक्ति ज्ञान-विहीन नहीं और न ज्ञान ही भक्ति-विहीन है। ज्ञान और भक्ति परम शिव के 'चिद्' और 'आनन्द' अंश हैं।

'शिव' हिन्दू देवमाला का वह शक्तिशाली चरित्र है जिसका गहरा प्रभाव भारतीय जनजीवन पर ही नहीं, अपितु संसार के अन्य देशों पर भी पड़ा है। मिश्र और सिन्धु घाटी की सभ्यताओं से लेकर वैदिक काल और तत्पश्चात् अर्वाचीन युग तक शिव की आराध्य देव के रूप में महत्ता रही है।

प्रसिद्ध इतिहासकार आर. सी. मजुमदार के कथनानुसार शिव के रुद्र रूप का वर्णन ऋग्वेद में प्रकृष्ट रीति से मिलता है। शिव का यह रूप यद्यपि भयानक और विनाशकारी है किन्तु एक कल्याणकारी देवता के रूप में शिव की महत्ता सर्वमान्य है। शिवशंकर, शम्भु, अमृता, अमरेश, गंगाधर आदि अनेक नामों से पूज्य हैं।

रुद्र-शिव एक विशेष जाति के लोगों के ही नहीं अपितु भारत के सभी आर्यों के आराध्य देवता थे। बौद्ध और भागवतों की तरह शैवों ने विदेशियों को भी अपने मत की ओर आकर्षित किया। भारतवर्ष को पराजित करनेवाले कुषाण राजा 'कैड्फिसस' (Kadphises) ने शैव-मत को पूरी तरह अपना लिया। इस

राजा के सिक्कों के पृष्ठ भाग पर शिव को एक लम्बे त्रिशूल के साथ नंदी के समीप खड़ा दिखाया गया है। आगे चलकर शिवपूजन लिंग-पूजन में परिवर्तित हुआ। कई विद्वानों का मत है कि लिंग-पूजा और शिव को एक देवता के रूप में मानने का विचार आर्यों ने 'सिंधु-घाटी' की सभ्यता से उधार लिया था।

भूगर्भशास्त्रियों के मतानुसार; हिन्द, अफ्रीका और आस्ट्रेलिया प्राचीनकाल में एक ही महाद्वीप में सम्मिलित थे। यहाँ यह बात विचारणीय है कि 'द्रविड़', जो शिव को अपना देवता मानते थे, अफ्रीका से ही यह धारणा लेकर आये थे।

'नीलमत पुराण' के अनुसार कश्मीर की सुप्रसिद्ध नदीवितस्ता का उद्‌भव शिव द्वारा अपना त्रिशूल गाड़ने से हुआ। नीलमत में पार्वती को ही रुद्राणी कहा गया है। उसे सती रूप में शिव ने ही यहाँ लाकर सतीदेश—कश्मीर की स्थापना की थी :

> अद्रिवत्सासि भद्रं ते तद्देहाच्छृङ्गिणी नदी।
> शम्भुनोढासि रुद्राणी स्रवन्त्यसि मर्याथिता॥

—**नीलमत पुराण**, श्लोक 315

(अर्थात्) तेरे लिए कल्याण हो। तुम पर्वत-पुत्री हो शिव के शरीर से उत्पन्न होने के कारण तुम्हें पार्वती कहा गया है। ओ रुद्राणी! तुम्हें शम्भु यहाँ ले आये हैं। तुमसे प्रार्थना है कि तुम नदी का रूप धारण कर अपनी यात्रा आरम्भ करो।

पशुपति के रूप में शिव की मान्यता प्राचीन काल से रही है। इससे शिव पशुओं के भी मान्य देवता रहे हैं। कश्मीरी-विश्वकोश प्रथम खण्ड के अनुसार 'ज़ज नै' के स्थान पर स्थापित शिलालेख पर, जिसे 'राहो दश्व' ने स्थापित किया था, शिव को पशु-पति के रूप में हाथ में त्रिशूल धारण किये दिखाया गया है।

कल्हण तथा अन्य कश्मीरी इतिहासकारों द्वारा कश्मीर में भव्य शिवालयों की स्थापना का वर्णन इस बात का साक्षी है कि भारत की ही तरह यहाँ भी इस देवता को बड़ी भारी मान्यता प्राप्त थी। कश्मीर के कई राजाओं ने लोगों की शैव-भक्ति से प्रभावित होकर कई तीर्थों पर शिव-मन्दिरों का निर्माण कराया। सुप्रसिद्ध कश्मीरी शासक ललितादित्य की माता 'नरेन्द्र प्रभा' ने नरेन्द्रेश्वर की स्थापना करायी। स्वयं राजा ललितादित्य ने ज्येष्ठरुद्र शिवालय स्थापित कर इसके निर्वाहार्थ कई गाँव समर्पित किये। इसी राजा ने शिव-भूतेश तीर्थ के लिए भी अनुदान दिया।

सैंकड़ों वर्ष से चली आ रही अमरनाथ यात्रा को आज तक इतनी प्रसिद्धि प्राप्त है कि हर वर्ष श्रावण पूर्णिमा को भारत तथा विदेशों के हज़ारों यात्री दुर्गम घाटियों, पर्वतीय मार्गों और ऊँची उपत्यकाओं के बीच से प्रायः पैदल चलकर

अद्‌भुत हिमलिंग के दर्शन करते हैं।

शैव मत का दार्शनिक पक्ष हो अथवा भक्ति-पक्ष, दोनों में कश्मीर की देन अनुपम रही है। इस मत के प्रवर्तकों ने स्वछंद विचारधारा को प्रवर्धित किया। ऐसे विचारों में जगत को सत्य मानना, जाति भेद के स्थान पर 'वसुधैव कुटुंबकम्' की उच्चतम भावना और गृहस्थी रहते हुए शिव की प्राप्ति, सर्व साधारण के लिए एक नयी दिशा प्रदान करती है।

ये मान्यताएँ कश्मीर की विशिष्ट संस्कृति पर अपना गहरा प्रभाव डाल चुकी हैं। यही नहीं अपितु यहाँ के लोक-साहित्य में भी इसका स्पष्ट दिग्दर्शन होता है। एक लोकगीत का अनुवाद शिव के लिए कितना अपनत्व प्रकट करता है :

सखि रे कहाँ गए शिवनाथ
इस गरमी में कहाँ गए?
गए वे अमरनाथ
इस गरमी में, इस गरमी में

शुद्ध माटी से लीपन कर लूँ,
लीपन कर लूँ
स्वर्ण-पात्र में भात परोसूँ,
भात परोसूँ
कहाँ गए शिवनाथ सखि रे!
कहाँ गए?

चौदहवीं शती ईस्वी, कश्मीरी काव्य की कोख ललेश्वरी जैसी अमर कवयित्री के वाकों[1] से परिपूरित करती है। शैवदर्शन का सुन्दर निरूपण इस कवयित्री की काव्य-धारा में स्थान-स्थान पर दृष्टिगत होता है। इससे पूर्व ही कश्मीर में इस्लाम का आगमन हो चुका था। इस प्रकार सूफ़ीवाद ने यहाँ के जन-जीवन को प्रभावित करना आरम्भ कर दिया था। लल्लेश्वरी ने धार्मिक-सहिष्णुता के प्रचारार्थ शैव-दर्शन और सूफ़ीवाद के सम्मिश्रण से सार्वभौमिक-प्रेम की सहज सांस्कृतिक पीठिका तैयार की, जिसकी जड़ें यहाँ की धरती में आज तक मज़बूती से जमी हुई हैं। इस विचारधारा का प्रभाव नन्द-ऋषि, कृष्ण राज़दान, परमानन्द तथा शम्स फ़कीर आदि कई सूफ़ी कवियों में उपलब्ध होता है।

संस्कृत-साहित्य का विस्तृत धरातल, शैवदर्शन की विश्वविख्यात देन, शताब्दियों से चली आ रही साहित्य रचने की बलवती कामना और भव्य प्राकृतिक

1. एक कश्मीरी काव्य विधा

परिवेश के साथ एक महान शिव भक्त का आर्द्र हृदय, यही था वह परिप्रेक्ष्य जो कृष्ण राज़दान को धरोहर में मिला था। यही थी उसकी साहित्यिक थाती जिसे लेकर उसने अनुपम लीला-गीतों का सृजन किया। भावुकता, कोमल भावना और संगीत प्रेम ने इन गीतों में अमर बनने की शक्ति भर दी और राज़दान जीवन भर भक्ति-माधुर्य के रस भरे कलश शिव को अर्पित करते रहे।

शिव राज़दान का इष्टदेव ही नहीं उनका सर्वस्व है। शिवत्व से प्रेरित होकर राज़दान मानवता के उच्चादर्शों के स्वप्न सँजोते रहे। उनकी वैचारिक पीठिका की महानता इस बात में है कि वे राम और कृष्ण को भी शिव ही समझते हैं :

राम कृष्ण हैं, कृष्ण राम
हमने की भक्ति निष्काम।

राधे-श्याम, सीता-राम तथा गौरी-शंकर उनकी दृष्टि में एक ही सत्ता के भिन्न रूप हैं और सभी शिवत्व का आभास देते हैं। इस एकता द्वारा वे कई विचार-धाराओं को एक करके एक नयी परम्परा को जन्म देकर विशाल-हृदय होने का प्रमाण उपस्थित करते है। सगुण और निर्गुणवाद में न उलझकर वे विशुद्ध भक्ति का आँचल पकड़ते हैं:

प्रभात खिल उठा
मैंने अपना मुख धोया
दुख भागा, सुख मिला
ओढ़ा वासंती दोशाला
राधे-श्याम उपवन में देखा
लक्ष्मी-नारायण स्वयं वही
गौरी-शंकर, सीता-राम।

लीला-गीतों के मधु-मिश्रण और भक्तिपरक सरलता ने राज़दान को एक ऊँचे लीला-कवि के रूप में स्थापित किया। उन्नीसवीं शती में जन्मे कृष्ण राज़दान के पश्चात् आज तक इस विधा में कोई भी कवि उनकी बराबरी न कर सका। इनके लीला-गीत आज तक बड़े चाव से गाये जाते हैं। यद्यपि समय कई करवटें ले चुका है, यह गीत आकाशवाणी के श्रीनगर केन्द्र से उषा-कालीन सभाओं में प्रसारित होकर जो मिठास घोलते हैं उससे मन को सन्तोष भी मिलता है और शान्ति भी। श्रद्धा, माधुर्य और शब्द-शक्ति से जुड़ी संगीतमयता 'राज़दान' के इन गीतों को सदा सर्वदा के लिए अमर बना गयीं हैं।

जीवन-दर्पण

'पीरपांचाल' हिमालय की वह पर्वत शृंखला है जो कश्मीर के दक्षिण में एक मूक तथा शांत संन्यासी के समान ध्यान-निमग्न है। यह ऊँची तथा विस्तृत शृंखला उस विशाल 'पांचाल-राज्य' का आभास देती है जो भारत के इतिहास में ख्यात-नामा है। घाटी के उत्तर की ओर हरमुख और महादेव पर्वत अपनी पवित्रता, प्राचीनता और शांतमना होने का सन्देश देते हुए दृष्टिगत होते हैं। इसी दिशा में शिव के निवासस्थान नगराज कैलाश को भी नमन किया जा सकता है।

पर्वतों की कोख में पांचाल के आँचल में बसा है 'वनपुह' गाँव जो जम्मू-कश्मीर राष्ट्रीय मार्ग के समीप होने के कारण काफ़ी प्रसिद्धि पा चुका है। अनन्तनाग से तीन किलोमीटर और श्रीनगर से कोई साठ किलोमीटर की दूरी पर बसे इसी सुन्दर गाँव में 24 अगस्त, 1850 ईस्वी को कृष्ण जू[1] राज़दान का जन्म हुआ। इनके पिता का नाम गणेश रैना था। वे एक गण्यमान्य व्यक्ति थे और बड़े ज़मींदार भी। प्राय: कश्मीर से बाहर रहा करते अत: उनका लाहौर से विशेष सम्बन्ध था। वे नौकरी के सिलसिले में यहाँ आते-जाते थे। उनकी प्रबल इच्छा थी कि उनका एकमात्र पुत्र विद्यारूपी आभूषण से सुसंस्कृत हो। इसीलिए उन्होंने कृष्ण राज़दान को फ़ारसी, गणित, ज्योतिष तथा अन्य शास्त्रों में उत्तम शिक्षा दिलवायी। इस कार्य के लिए उन्होंने कुछ उत्तम शिक्षकों की सहायता ली। शिक्षा राज़दान को घर पर ही दी गयी। कॉलिज आदि पास में न होने के कारण राज़दान ने विद्याभ्यास जारी रखा और अपनी ज्ञान-पिपासा को स्वयं शांत करते रहे।

गणेश रैना को उस समय के डोगरा शासक ने भूमि का एक बड़ा भाग प्रदान किया था। इस भाग का नाम पड़ा—'खिरमने गणेश' अर्थात् गणेश का खलिहान। आज यहाँ एक पुरवा बसा है जो इसी नाम से जाना जाता है।

---

1. आदर सूचक शब्द

गणेश रैना एक सज्जन और साधु-सेवी व्यक्ति थे। इनके घर में साधुओं और विद्वानों का आना-जाना था, प्रवचन और भजन आदि भी होते रहते थे। छोटे राज़दान इन सभी सभाओं में सम्मिलित होते। परिणामस्वरूप बाल्यकाल से ही उनके नन्हें हृदय पर आध्यात्मिक आस्था और भक्ति की छाप पड़ी। यही आस्था आगे चलकर उनके एक पक्का शिव-भक्त बनने में सहायक हुई।

पांचाल श्रृंखला की ही एक पहाड़ी के समीप बसा है मंज़गाम नाम का गाँव। चीड़ के पेड़ों के बीच यहाँ एक प्राचीन मन्दिर है जिसमें एक चश्मा भी है। यह देवी का प्रसिद्ध तीर्थस्थान है। हर वर्ष ज्येष्ठ अष्टमी के पर्व पर यहाँ एक बड़े मेले का आयोजन होता है। लोग बड़ी श्रद्धा से यहाँ आते हैं और मेले में सम्मिलित होते हैं। एक बार गणेश रैना भी इसी तीर्थ की यात्रा पर सपरिवार रवाना हुए। लम्बे सफ़र के कारण उन्होंने अपने बेटे राज़दान और उसकी बहन को एक नौकर की निगरानी में घर पर ही रखा। जब छोटे राज़दान को इस बात की भनक पड़ी तो वह दुखी हो उठा और रोने लगा। नौकर ने उसे शांत करने के लिए गाँव की नदिया के किनारे सैर कराने ले गया किन्तु इससे बच्चे की बेचैनी में कोई कमी न हुई। वापस आकर बच्चे को गहरी नींद आयी। उसने एक स्वप्न देखा। इस स्वप्न में कोई विचित्र देवी उसे दूध पिलाकर और मिश्री खिलाकर वापस लौट गयी। जब राज़दान जागा तो उसके मुख से देवी के गुणगानार्थ कुछ पंक्तियाँ फूट पड़ीं। यहीं से उसकी रचना-प्रक्रिया का श्रीगणेश हुआ। जब बच्चे ने यह बात अपने पिता को वापस आने पर सुनाई तो उसे आज्ञा मिली कि वह यह सारी बात गुप्त रखे।

राज़दान की जन्म तथा मरण तिथि के सम्बन्ध में लेखकों में मतैक्य नहीं। 'कश्मीरी साहित्य का इतिहास' के विद्वान लेखक शशिशेखर तोषखानी कृष्ण राज़दान का जन्म 1848 ई. में मानते हैं और मरण 1927 ई. में। विद्वान भाषाविद् ब्रज. बी. काचरू ने 'कश्मीरी साहित्य' (अंग्रेज़ी में) में ये तिथियाँ 1850 और 1925 ई. निश्चित की हैं। कश्मीर विश्वविद्यालय के कश्मीरी विभाग द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'अहवाल नामा' में ये तिथियाँ 1851 और 1926 दी गयी हैं।

अब्दुल अहद आज़ाद ने 'कश्मीरी ज़बान और शाइरी' नामक पुस्तक में कवि राज़दान का जन्म संवत् 1907 विक्रमी अंकित किया है। यह अंग्रेज़ी में 1850 ई. बनता है। 'आज़ाद' ने मरण तिथि 22 मकर 1982 विक्रमी दी है, जो अंग्रेज़ी में 4 फरवरी 1926 बनती है। श्री सोमनाथ वीर ने कवि के संकलित काव्य में जन्म 19 अगस्त 1850 माना है और मरण 13 दिसम्बर 1926 ई.। जहाँ तक कवि के मरण संवत् का सम्बन्ध है वह 1926 ही है इसमें कोई सन्देह नहीं। प्रश्न रह जाता है सही दिन का। जहाँ तक जन्म-वर्ष का सम्बन्ध है लेखकों में

इसमें वर्ष भर का अन्तर है। सभी साक्ष्यों की पूरी छानबीन के पश्चात् मेरी राय में नीचे दी गयी तिथियाँ ठीक बैठती हैं :

जन्म : 24 अगस्त 1850 ई.

मरण : 4 दिसम्बर 1926 ई.

संतों का-सा व्यक्तित्व, फक्कड़ स्वभाव और स्वस्थ शरीर के साथ भक्तों का-सा जीवन यही राज़दान की पहचान है। यद्यपि वे गृहस्थ थे पर उन्हें कोई सांसारिक लोभ न था। शिव की प्राप्ति उनके जीवन का एकमात्र ध्येय था।

तेजवान मुख पर सजती दाढ़ी, माथे पर लम्बा टीका और 'फिरन' के पहरावे में वे एक मुनि के समान लगते थे। वे सिर पर एक गोल पगड़ी बाँधते थे जो उन दिनों कश्मीरी पंडितों में प्रचलित थी। शीतकाल में वे 'फिरन' के ऊपर एक सफ़ेद कश्मीरी कम्बल ओढ़ते थे। घर में पैरों में खड़ाऊँ और बाहर जाते समय जूती। प्राय: पैदल चलते थे।

उन्हें शुद्ध सादा आहार प्रिय था। कभी-कभी मांस भी खाते थे किन्तु सबको शाकाहारी रहने का परामर्श देते। प्रभात काल में बहुत सवेरे उठकर स्नान-ध्यान में लीन हो जाते। मनमोहक प्रभात का वर्णन उनके काव्य में स्थान-स्थान पर मिलता है। जब वे बड़े हुए तो उन्हें गाँव का मुखिया नियुक्त किया गया। सन्त-वृत्ति वाले कवि को यह कार्य अच्छा नहीं लगा और उन्होंने शीघ्र ही इसे तिलांजलि दे दी और पूर्ण रूप से उपासना और काव्यसृजन के कर्म में लीन हो गये। इक्कीस वर्ष की आयु से उन्होंने क्रमबद्ध लिखना आरम्भ किया और मरते दम तक लिखते रहे। अच्छी आदतें, स्वाभिमान और स्वाध्याय उन्हें प्रिय था। वे जहाँ भी जाते, लोग उनका आदर-सत्कार करते। उन्हें ज्योतिष-शास्त्र का ख़ासा ज्ञान था। इस आधार पर वे लोगों को अचम्भे में डाल देते थे। इस बारे में दो-एक संक्षिप्त घटनाओं का उल्लेख उचित रहेगा।

एक बार राज़दान कहीं बाहर गये थे। वापस लौटे तो अपने आँगन के समीप एक पड़ोसन को धूप में शाली सुखाते देखा। उस महिला को आवाज़ देकर कहने लगे—वर्षा आने ही वाली है, धान समेट लो नहीं तो भीग जायेंगे। पड़ोसन यह सुनकर हैरान रह गयी। आकाश में बादल कहीं न थे किन्तु वह कवि का कहा न टाल सकी। उसने धान समेट लिए। वह मुश्किल से यह काम पूरा कर पायी थी कि आकाश से वर्षा की बौछारें गिरने लगीं। आसपास के लोगों में इस घटना की चर्चा काफ़ी देर तक होती रही।

एक और ऐसी ही घटना आज तक सुरक्षित चली आ रही है। एक व्यक्ति कवि के लिए उपहारस्वरूप कुछ सुर्ख़ सेब ले जा रहा था। मार्ग में उसे एक जानकार मिला जिसने लाल सेब देखकर उस व्यक्ति से दो सेब माँगे। विवश होकर, उस व्यक्ति ने उसे सेब दे दिये। जब राज़दान के सामने सेब रखे गये तो

उन्होंने इन पर दृष्टि डालकर तुरन्त कहा कि अमुक व्यक्ति ने इनमें से दो सेब उड़ा दिये हैं। सेब लानेवाला व्यक्ति यह सुनकर कुछ लज्जित हुआ और सही व्यक्ति का नाम बताने पर राज़दान के पैरों में गिर पड़ा।

कश्मीरी भाषा के प्रसिद्ध आलोचक मुहम्मद यूसुफ़ टेंग कृष्ण राज़दान के व्यक्तित्व और काव्य पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं :

> "वह (राजदान) एक पहुँचे हुए कवि और एक परिपूर्ण व्यक्तित्व के स्वामी थे। उनमें विश्व-ज्ञानियों का-सा फैलाव नज़र आता है। वे एक गण्यमान्य व्यक्ति, साधु और ज्योतिषविद् थे। संस्कृत, फ़ारसी, हिन्दी और उर्दू भाषा के ज्ञाता थे। हिन्दू देवमाला पर उन्हें पूर्ण अधिकार था। ऐसे व्यक्ति अब मुश्किल से ही नज़र आते हैं।"

कृष्ण राज़दान ने 'फ़ारसी' में भी अच्छी कविता की है। वे इस भाषा में 'सबा' नाम से लिखते थे। एक फ़ारसी पद्य में वे अपने गाँव की इस प्रकार प्रशंसा करते हैं :

कश्मीर सदफ, दुर अस्त 'वनपुह'
अज़ लैलो गुहर पुर अस्त 'वनपुह'

अर्थात् यदि कश्मीर एक सीपी है तो उसमें रखा मोती 'वनपुह' का गाँव है। यह गाँव हीरे और जवाहरात से भरा पड़ा है।

रसिकता और तुरत उत्तर देने की क्षमता के लिए वे काफ़ी प्रसिद्ध थे। इनका जातीय सम्बन्ध कश्मीरी पंडितों से था। सर वाल्टर लारेंस के अनुसार कश्मीरी पंडित मुख्य रूप से शिव के अनुयायी हैं जो पर्वतों का स्वामी और पहाड़ी लोगों का ईश्वर है। सोमदेव जैसे कथाकार, कल्हण जैसे इतिहासकार, क्षेमेन्द्र जैसे कवि और आनन्दवर्धन जैसे रीतिकार इसी जाति के सिरमौर रहे हैं। विश्व-प्रसिद्ध दार्शनिकों और साहित्यकारों को जन्म देनेवाली इसी जाति से राज़दान जुड़े हैं। शिक्षा, राजकीय-कार्य तथा पत्रकारिता में आज भी इस जाति का योगदान चला आ रहा है।

उन दिनों श्रीनगर सांस्कृतिक गतिविधियों का केन्द्र था। कवि राज़दान प्राय: श्रीनगर जाते और वहाँ अपनी शिष्य-मंडली में नयी रचनाएँ सुनाते। इनके सबसे बड़े शिष्य थे क़रफली मुहल्ला श्रीनगर के कंठ जू शराबी, जो मधुर कंठ से कवि राज़दान के लीला-गीतों का गायन करते थे। राज़दान के अन्य शिष्यों में रघुनाथ मट्टू (डिप्टी कमिश्नर), जानकीनाथ मिसरी, हरिहर कौल तथा रामचन्द्र आदि शामिल थे।

डोगरा महाराजा प्रतापसिंह इन दिनों कश्मीर के शासक थे। स्वयं धर्मात्मा होने के कारण वे साधु-सन्तों का बहुत आदर करते थे। कवि राज़दान के जन्म

स्थान 'वनपुह' के पास 'विसू' ग्राम के निवासी देव कौल और 'किलम' ग्राम के आनन्द कौल महाराजा प्रतापसिंह के पास सरकारी कार्य के लिए आया-जाया करते थे। इन दोनों ने एक दिन राज़दान के ज्योतिषज्ञान, काव्य और विद्वत्ता के सम्बन्ध में महाराजा से को बताया। राज़दान राजदरबार में बुलाये गये। राज़दान से बातचीत करके राजा काफ़ी प्रसन्न हुए और उनके घनिष्ठ मित्र बन गये। सम्बन्ध गहरा होता गया। कहते हैं कि राजा ने राज़दान के श्रीनगर आने के लिए एक शिकारे का प्रबन्ध कराया था। जब महाराजा शीतकालीन राजधानी जम्मू के लिए प्रस्थान करते तो वे जाती और आती बार राज़दान के घर जाकर आभार प्रकट करते थे। इससे कवि को ख़ासी प्रसिद्धि मिली।

कवि का संक्षिप्त परिचय देने के पश्चात् युग-मुकर में झाँककर सामाजिक परिवेश की एक झलक ली जाये। इस युग से पूर्व कश्मीर पर पठानों और सिक्खों का राज रहा। पठानों ने कश्मीरियों का खूब शोषण किया। कश्मीरी पंडितों पर पठानों के ज़ुल्म की कथाएँ इतिहास बन गयी हैं। उनका काम था दमन द्वारा पैसा ऐंठना। हत्याएँ और लूटमार इस युग में साधारण बात थी। धार्मिक स्थानों का अनादर, पुस्तकालयों और मूल्यवान पाण्डुलिपियों को जलाना तथा लोगों को भयभीत करना, इन दिनों रोज़ होता था। आखिर यह निकृष्ट युग समाप्त हो गया। डोगरा शासकों के आने से जनता ने एक हद तक चैन की साँस ली।

कवि राज़दान का जन्म प्रथम डोगरा शासक गुलाब सिंह के ज़माने में हुआ। रणवीर सिंह के ज़माने में कवि ने जवानी की बहार देखी। प्रताप सिंह के शासन-काल में उनकी उपलब्धियाँ सामने आयीं और अन्तिम डोगरा शासक हरि सिंह के गद्दी पर बैठने के पश्चात् वे स्वर्ग को सिधारे।

यद्यपि डोगरा शासन भी सामन्ती शैली का शासन था किन्तु यह कश्मीरियों के लिए अपेक्षाकृत शांति का समय था। इसी शासन के अन्त में कश्मीर में आज़ादी का आन्दोलन छिड़ा जो भारत के स्वतन्त्रता-संग्राम से बराबर जुड़ा रहा और एक ज़ोरदार उथल-पुथल के पश्चात् कश्मीर नये युग के द्वार पर खड़ा हो गया। डोगरा शासन-काल में हुकूमत की असली लगाम अंग्रेज़ों के हाथ में थी अतः नवीन आविष्कारों और शिक्षा के फैलाव से नयी धारणाओं का समावेश आरम्भ हो गया। डोगरा शासकों ने भी कई सुधार लागू किये। रणवीर सिंह के शासन-काल में कई महत्त्वपूर्ण संस्कृत तथा शारदा भाषा में लिखित ग्रन्थों का मुद्रण हुआ। इस प्रकार कई कृतियों को सुरक्षित रखने में सहायता मिली। किन्तु सर्व-साधारण का जीवन स्तर ऊँचा न हो पाया।

सुप्रसिद्ध कश्मीरी इतिहासकार पी. एन. के. बामज़ई महाराजा प्रतापसिंह (1885 ई. से 1925 ई.) के शासन-काल के सम्बन्ध में लिखते हैं :

"लोगों का जीवन स्तर काफ़ी पस्त था। शिक्षा, जीविकार्जन और यातायात के साधन बहुत कम थे। महाराजा प्रत्येक प्रार्थी की शिकायत दूर करने का प्रयत्न करते थे। उनकी स्मरण-शक्ति तेज़ थी। जो अधिकारी किसी प्रार्थी की शिकायत दूर न करने का अपराधी पाया जाता, उसकी खूब ख़बर ली जाती। राजा अपनी प्रजा की उन्नति का इच्छुक होते हुए भी, राजनीतिक संगठन स्थापित करने, धार्मिक संस्थाएँ खोलने तथा समाचार-पत्र चलाने की इजाज़त देने में ईर्ष्यालु था।"

ऐसा होने पर भी महाराजा ने शिक्षा और स्वास्थ्य-सुविधाओं को बढ़ावा देने के लिए कार्य किया। कश्मीर को 'वितस्ता' तथा अन्य नदियों में आनेवाली बाढ़ों से सुरक्षित करने के लिए बाँध बनाये गये। इससे लोगों को बाढ़ों की विनाश-कारी समस्याओं से किसी हद तक छुटकारा मिला।

इस युग में कश्मीरी जनता का कोई अस्सी प्रतिशत भाग खेती पर निर्भर था। किन्तु किसानों की दशा दयनीय थी। वे जिस भूमि पर दिन-रात परिश्रम करते थे, उस पर उन्हें स्वामित्व प्राप्त न था। राजकीय कर्मचारियों की एक भारी फ़ौज उनकी वर्ष भर की कमाई पर हाथ साफ़ करना अपना कर्त्तव्य समझती थी। इस कारण देहाती इलाक़ों में ग़रीबी, लाचारी और निराशा फैली हुई थी।

महाराजा प्रताप सिंह ने सर वाल्टर लारेंस द्वारा राज्य में भूमि का बन्दो-बस्त करवाया। भूमि-मापन तथा माल-विभाग में दक्ष लारेंस ने गाँव-गाँव जाकर न केवल भूमि का लेखा-जोखा ठीक किया, अपितु जनजीवन, रहन-सहन, आर्थिक परिस्थितियों तथा सांस्कृतिक उत्थान-पतन का सर्वेक्षण करके कई सुधार कार्यों के सम्बन्ध में अपनी सिफ़ारिशों सहित एक लम्बी रिपोर्ट महाराजा को पेश की। बाद में लारेंस ने इस सारे कार्य को 'द वैली आफ़ कश्मीर' नामक पुस्तक में प्रकाशित करवाया।

इसी युग में बनिहाल-कार्ट-रोड (आज का संवर्धित राष्ट्रीय राजमार्ग) तथा 'जेहलम वैली रोड' के निर्माण तथा अन्य सुविधाएँ उपलब्ध होने पर यूरोप के पर्यटकों ने ख़ासी संख्या में कश्मीर आना आरम्भ किया। इससे कश्मीर की सुन्दर हस्त-कलाओं—शालबाफी, क़ालीनसाज़ी, रेशम तथा पेपरमाशी आदि को गति मिली और कश्मीर की सुन्दर वस्तुओं का निर्यात आरम्भ हुआ। इससे विदेशों में कश्मीर के सौन्दर्य और कला-कौशल के चर्चे होने लगे।

प्रेस और भाषण की पूरी स्वतन्त्रता न होने से लोग अपनी कठिनाइयों को वाणी देने से वंचित थे। अतः भाग्यवाद फैल रहा था। इधर इलाज और उपचार आदि की पूरी सुविधा उपलब्ध न होने से कई संक्रामक बीमारियों से हज़ारों

मूल्यवान जानें काल का ग्रास बन जाती थीं। 1882 ई. में कश्मीर में हैज़े से दस हज़ार लोगों की मृत्यु हुई।

जागीरदारी के जुए तले जनता का सामूहिक साहस कुलबुला रहा था। नैराश्य का फैलाव हो रहा था। परतन्त्रता तथा आर्थिक असमानता से विकास की राहें धुंधली पड़ गयी थीं। ऐसे हालात में साहित्य रचना आसान कार्य न था। रची हुई पुस्तकें छपाई की सुविधा की कमी तथा लिपि की समस्या के कारण बड़ी मुश्किल से गायकों द्वारा जनता तक पहुँच पाती थीं।

इन्हीं परिस्थितियों, दुःखों और समस्याओं की झलक हमें राज़दान की कविता में मिलती है। इस परिस्थिति से निपटने के लिए जहाँ राजनीति अक्षम थी, वहाँ कविता क्या कर सकती थी? वह लोगों में विश्वास जगाने के लिए भक्ति का सहारा ले रही थी।

राष्ट्रीय स्तर पर भारत में अंग्रेज़ी-शासन के विरुद्ध जनान्दोलन खड़ा करने के लिए भूमि हमवार की जा रही थी। यूरोप से नये आविष्कारों और क्रांतिकारी विचारों का भारत में आगमन हो रहा था। महाविद्यालयों और कुछ विश्व-विद्यालयों के खुल जाने से शिक्षा का प्रसार होने लगा था। विज्ञान और राजनीति के नये रूप सामने आ रहे थे। शिक्षित नवयुवकों में देश-भक्ति की लहर चल पड़ी थी। आर्यसमाज तथा ब्रह्मसमाज जैसी संस्थाएँ कार्यरत हो गयी थीं।

राज़दान यह सब कुछ देख रहे थे। वे पहले कश्मीरी कवि थे जिन्होंने स्पष्ट रूप से देश-भक्ति तथा जनता के सच्चे मित्रों की बात अपनी शाइरी में की। यद्यपि वे नश्वर संसार में शिव को सर्वस्व अर्पण करने की बात करते हैं किन्तु फिर भी दरिद्रता के तले दबे परिवारों और अनेक समस्याओं में जकड़े लोगों के दुख को वाणी देना वे भूलते नहीं। यद्यपि इस वाणी का स्वर धीमा है किन्तु इसकी कसक गहरी है। देश की समस्याओं की कसक और गहरी पीड़ा की निवृत्ति के लिए वे शिव की शरण लेते हुए भी स्वदेश अर्थात् भारत की संस्कृति की स्थल-स्थल पर भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। विशाल भारत के रूप में वे शिव के रूप को ही नमन करते हैं। इस देश की संस्कृति के प्राचीन स्तम्भ, जो विशाल पर्वतों, महान् नदियों और विश्व-विख्यात तीर्थस्थानों के रूप में आज भी विद्यमान हैं, कवि राज़दान की दृष्टि से कभी भी ओझल नहीं होते। शिव की शक्ति राग्न्या के रूप में वे इन नदियों और तीर्थों की सत्ता को पाते हैं :

तुम 'चन्द्रभागा' और 'वितस्ता'
सिन्धु, सरस्वती, यमुना
गंगा सहित प्रयाग अयोध्या
तुम सशक्त हो हे 'राग्न्या

—**कुलियात**, पृ. 446

महेश की अभ्यर्थना करते हुए वे देवों के देव और काल-संहारक को भारत के कुछ महान् तीर्थों के माध्यम से याद करते हैं :

गंगा, अयोध्या, प्रयाग, पुष्कर
पाप हरण हो इनके फल से
देवों के देव महेश्वर
काल-भंजक तुम भस्माधर

—**कुलियात**, पृ. 172

उन्होंने हिमालय, सुमेरु, गोवर्धन, विन्ध्याचल आदि नगराजों का ज़िक्र बड़े आदर से किया है। ब्रज भूमि को तो वे अपना मन ही समर्पित कर आते हैं :

मेरा मन तो वृन्दावन में
आत्मरूप नारायण में

एक स्थान पर कृष्ण को कामदेव की संज्ञा देकर उनकी केलियों का सुन्दर वर्णन इस प्रकार करते हैं :

तन की छवि है श्यामल
पालन करने गौ धवल
कामदेव-से ब्रज के बासी
गोपिन संग खेलें खेल नवल।

—**कुलियात**, पृ. 211

मसनवी काव्यों की परम्परा

अमीन कामिल[1] का यह कथन शतशः सही है कि एक सामन्ती-समाज में प्रेम और इसकी अभिव्यक्ति पर कई प्रतिबन्ध होते हैं। इसी कारण मसनवियों[2] की कथाओं में देवमाला के आध्यात्मिक तथा अन्य कई तत्त्व सम्मिलित किये जाते हैं, जिससे साधारण जनता इन कृतियों को बेरोक-टोक पढ़ सके और प्रेम-कथा का रसास्वादन करे।

कश्मीरी भाषा में मसनवी काल 1765 ई. से आरम्भ होकर 1928 ई. तक चलता रहा। इस युग के कश्मीरी मसनवीकारों के सामने इस विधा की कोई अपनी परम्परा विद्यमान न थी। अतः यह लोग फ़ारसी अथवा हिन्दी कथाओं की ओर आर्कषित हुए। उधार ली गयी इन कथाओं से ईरान आदि देशों के जीवन, रीति-रिवाज तथा कई अन्य सांस्कृतिक उपादान कश्मीरी मसनवियों में शामिल हो गये। कश्मीर का वातावरण भी साथ होने के कारण यहाँ की पुष्प-सज्जा, वन-छटा, पर्वत-गरिमा तथा नदी-नालों और झरनों की मधुर ध्वनि स्वतः ही इनमें समाविष्ट हो गयी।

जब प्रथम कश्मीरी रामायणकार—प्रकाश कुरीगामी[3] ने कश्मीरी रामायण की रचना की तो इस कथा में भी कई नयी बातों का समावेश हो गया। इस राम-कथा में राम के वन-गमन पर विलाप करते हुए दशरथ को कश्मीर के सुन्दर स्थलों और तीर्थों की यात्रा करते हुए दिखाया गया है। वे इन्हीं स्थानों पर राम को खोजने निकल पड़ते हैं। कश्मीरी रहन-सहन, वेष-भूषा तथा कश्मीरी पंडितों की

---

1. कश्मीरी भाषा के प्रसिद्ध कवि
2. प्रेमाख्यान।
3. प्रो. बलजीनाथ पंडित द्वारा सम्पादित तथा कल्चरल अकादमी (श्रीनगर) द्वारा प्रकाशित रामायण।

विवाह-पद्धति का जो सजीव चित्रण इस कथा में हुआ है उसमें उन्नीसवीं शती के कश्मीर का जन-जीवन साकार हो उठा है। राम विवाह में स्वागत, रंगोली पर खड़ा होना, द्वार-पूजा, पुष्प-पूजा आदि सभी रीतियों का वर्णन हुआ है। इसमें आये विवाहगीत ठेठ कश्मीरी हैं। स्थानीय देवी-देवताओं को इस कथा में स्थान दिया गया है। सत्रहवीं शती की कश्मीरी कवयित्री रूपभवानी को भी इसमें सादर सम्मिलित किया गया है।

कथा, लंका और अयोध्या के बदले कभी-कभी कश्मीर में घटित होती है। सीता को कश्मीर के प्रसिद्ध स्थान 'वेरीनाग' जाते हुए मार्ग पर स्थित शंकरपुर गाँव में भूमि-प्रवेश करते हुए दिखाया गया है। कहीं-कहीं पर कश्मीर की सामन्ती व्यवस्था भी इस कथा में झलक उठती है।

ठीक इसी प्रकार जब कृष्ण राज़दान शिव-विवाह की कथा का वर्णन अपनी रचना 'शिव परिणय' में करते हैं तो राम-कथा की तरह ही उसमें कश्मीर का परिवेश सामने आ जाता है।

राज़दान के जन्म के पाँच वर्ष बाद कश्मीर के पहले मसनवीनिगार महमूद गामी की मृत्यु होती है। इनकी मसनवी 'यूसुफ़ ज़ुलेखा' का जर्मन भाषा में अनुवाद हुआ। इनके पश्चात सैफ़ुद्दीन तारबली (मृत्यु 1874 ई.) ने 'हीमाल नागराय' मसनवी की रचना की। इसकी रचना कश्मीर की एक लोकप्रिय लोककथा के आधार पर हुई। इसी लोककथा को मुफ़्ती सदरुद्दीन वफ़ाई और बाबा इसरार शाह क़ादिरी ने फ़ारसी कविता में रचा।

सुप्रसिद्ध कश्मीरी मसनवीनिगार मक़बूल शाह क्रालवारी (1820-1875) ने 'गुलरेज़' नामक मसनवी की रचना की। इसमें एक फ़ारसी प्रेमाख्यान को कश्मीरी रंग में प्रस्तुत करके प्रेम की वेदना, विरह और मिलन को बहुत ही मार्मिक तथा आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। पीर महीउद्दीन मिस्कीन (मृत्यु 1915 ई.) ने पंजाब को कश्मीरी मसनवी का रूप दिया। इसी प्रकार बाबा इसरार शाह क़ादिरी ने 1821 में 'चन्द्रबदन' को कश्मीरी मसनवी का रूप प्रदान किया।

'शिव परिणय' की रचना के समय कश्मीरी प्रेमाख्यानों की सारी थाती 'कृष्ण राज़दान' की नज़रों से अवश्य गुज़री होगी। हाँ, यह बात विचारणीय है कि उन्होंने जनसाधारण की प्रेम कथाओं के बदले अपने इष्ट देव शिव-विवाह की कथा को ही चुना। अन्य मसनवीनिगारों की तरह उन्होंने भी कथा-प्रसंगों में 'बहरे हज़ज' का ही प्रयोग किया है। यद्यपि 'शिव परिणय' पूर्ण रूप से मसनवी विधा पर पूरी नहीं उतरती किन्तु गीतों, स्तुतियों और कवित्तों को इस रचना में इस प्रकार जोड़ा गया है कि कथा का रूप उभरकर सामने आ जाता है। कथा प्रसंग की न्यूनताओं के बावजूद इस रचना का खासा महत्त्व है।

कृष्ण राज़दान से पूर्व शिव-विवाह का कश्मीरी निरूपण प्रसिद्ध कश्मीरी संत कवि 'परमानन्द' ने भी किया था। किन्तु कथा के संक्षेप और सपाट वर्णन से यह रचना कुछ कमज़ोर लगती है। इस कथा को एक ही छंद में वर्णित किया गया है। कहीं-कहीं पर तो वर्णन गद्यमय होकर रह गया है। इसके विपरीत 'शिव परिणय' का कलात्मक स्तर काफ़ी ऊँचा है। कश्मीरी पंडितों की विवाह-पद्धति का पुट देकर कथा को रोचक बनाया गया है। इस कथा में आये लीला-गीत कोमल शब्द-चयन, उपयुक्त उपमाओं और रसमिश्रण से बहुत आकर्षक बन पाये हैं। शिव तथा अन्य सब देवताओं की स्तुतियों में कवि का भक्त हृदय पिघल उठा है। रचना में कश्मीर के तीर्थस्थानों, महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक तीर्थों तथा रूपातीत प्रकृति-चित्रण से जो कलात्मक अभिव्यक्ति हुई है उससे यह कृति उत्कृष्ट बन गयी है।

पुराणों का अध्ययन भारतीय संस्कृति के कई पहलुओं को समझने में सहायक सिद्ध हुआ है। आचार्य श्रीराम शर्मा के अनुसार कोई भी ज्ञान विज्ञान, कल्पना अथवा मानव-मस्तिष्क की ऐसी योजना न होगी जिसका ज़िक्र पुराणों में किसी-न-किसी रूप में न आया हो। इन ग्रन्थों में कुछ ऐसे विषयों को, जिन्हें अन्य शास्त्रों द्वारा नहीं समझा जा सकता, साधारण भाषा में वर्णित कथाओं से स्पष्ट किया गया है।

सभी पुराणों में शिव-पुराण का महत्त्व सर्वमान्य है। इस पुराण का उद्देश्य शिव-भक्ति का प्रचार करके लोगों में परमार्थ की भावना को जागृत करना है। सभी पुराणों में शिव का चरित्र परम त्याग, तपस्या, परोपकार और वात्सल्य के गुणों से चित्रित किया गया है। जहाँ अन्य देवताओं को वैभवयुक्त अवस्था में प्रस्तुत किया गया है, वहाँ शिव को सर्व-त्यागी श्मशानवासी और महाकाल रूप होने पर भी कल्याणकारक देवता के रूप में स्थापित किया गया है। शिव गरल को अपने कण्ठ में छिपाये फिरते हैं। वह बाघम्बर और रुद्राक्ष की माला, बिल्व-पत्र तथा धतूरे के पुष्पों की सामान्य पूजा से ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। सम्भवतः यही कारण है जिससे सर्वसाधारण ने शिव को आज तक मान्यता प्रदान की है। एक आदर्श चरित्र होने के साथ-साथ उसका चित्रण मानवी क्रियाओं से पूरित है। वह सांसारिक रीति से प्रेम करते हैं, और क्रुद्ध तथा प्रसन्न होते हैं।

शिव-पुराण तीन खण्डों में विभक्त है—सृष्टि-रचना, सती खण्ड और पार्वती खण्ड। सती खण्ड में पार्वती के जन्म, शिव के साथ उसके विवाह और अन्त में 'दक्ष' के यज्ञ में देह-त्याग की कथा विस्तारपूर्वक कही गयी है। दक्ष को ब्रह्मा का पुत्र माना गया है। उसी से प्रजा की उत्पत्ति का आरम्भ भी बताया गया है। 'दक्ष' के यज्ञ का वर्णन ध्यानपूर्वक पढ़ने से लगता है कि यह विष्णु और शिव के अनुयायियों का ही संघर्ष है। इसमें अन्ततः शिव-पक्ष की ही विजय होती है।

शंकरा का शिव के साथ विवाह करने का दृढ़ निश्चय, अभूतपूर्व तपस्या, शिव की आकृति की अपेक्षा उसके गुणों से प्यार, उसे नारी-शिरोमणि की पदवी प्रदान करता है।

शिव से प्रगाढ़ भक्ति के कारण कृष्ण राज़दान ने सती खण्ड और पार्वती खण्ड को सामने रखकर 'शिव परिणय' की कथा के तंतु जोड़े हैं। कथा को गौण रखकर स्तुतियों और लीला पंक्तियों द्वारा शिव के अनेक रूपों का गुण-गान किया है। राज़दान स्वयं कहते हैं कि शिव-विवाह केवल शिव के बहुमुखी चरित्र को चित्रित करके उसे अपने हृदय-पटल पर लाकर उसकी आराधना और पूजा करने का बहाना मात्र है। मौलिक शिव पुराण में जिन घटनाओं द्वारा 'शिव विवाह' की रचना हुई है, वे इस प्रकार हैं :

—इन्द्र का कामदेव को बुलाकर शिव पार्वती के पास भेजना।

—कामदेव द्वारा शिवजी का पार्वती के प्रति मोह उत्पन्न करना।

—शिव द्वारा कामदेव का भस्मीकरण।

—शंकर की प्राप्ति के लिए शंकरा की तपस्या।

—पार्वती की तपस्या से देवताओं का विचलित होकर ब्रह्मलोक में जाना।

—विष्णु और ब्रह्मा के आग्रह पर शिव से पार्वती के साथ विवाह करने की स्वीकृति।

—सप्त ऋषियों द्वारा हिमालय से उसकी पुत्री का विवाह, शिव से कराने की सम्मति प्राप्त करना।

—शिव की बारात का सजाया जाना और तत्पश्चात् बारात का प्रस्थान।

—शिव-पार्वती का विवाहोत्सव।

कृष्ण राज़दान ने 'शिव-परिणय' में जिन नये तत्त्वों का समावेश किया है उनमें कश्मीरी पंडितों की शैली पर विवाहोत्सव, बारातियों का स्वागत, मेनका द्वारा दूल्हे को कुरूप पाकर क्रोधित होना, दूल्हे और दुलहन का रंगोली पर खड़ा होना और मिश्री खाना, बारातियों के स्वागत में गाये जानेवाले गीत, द्वार-पूजा, खाने से सम्बन्धित विशेष गीत, बारातियों के लिए बुखारियाँ गरम करने के लिए चन्दन की लकड़ी का प्रयोग, स्त्रियों द्वारा वधू के लिए आभूषण साथ न लाने की शिकायत के बारे में सुनकर शिव द्वारा स्वर्ण-हिम का बरसाना तथा पुष्प-पूजा के मनोहर दृश्य उल्लेखनीय हैं। भारत की किसी अन्य भाषा में रचित शिव-विवाह की कथा में हिम-वर्णन की बात नहीं मिलती। विवाहोत्सव को शिवरात्रि के शुभ पर्व से जोड़ना और इस पर्व पर कश्मीर के प्रसिद्ध चश्मों में विचित्र क्रिया-कलापों के दर्शन से इस कथा में रोचकता उत्पन्न की गयी है।

इस रचना में कृष्ण राज़दान ने सर्वप्रथम 'गणेश' की वन्दना की है। तत्पश्चात् कवि अपने परमगुरु शिव की वन्दना करते हैं। इसके बाद तीन कारणों

तथा सृष्टि उत्पत्ति का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। उमा के विवाह की समाप्ति पर दक्ष अपनी पुत्री के लिए शिव-जैसा पति मिलने पर प्रसन्न होकर उसका गुणगान करते हैं। अन्त में शिव, उमा को साथ लेकर कैलाश पर्वत की ओर प्रस्थान करते हैं।

कुछ समय के बाद शिव एक धार्मिक सभा का आयोजन करते हैं। दक्ष अचानक इस सभा में पहुँचते हैं, पर शिव उनका आदर-सत्कार नहीं करते। इस पर दक्ष प्रजापति क्रुद्ध हो जाते हैं और एक ऐसा यज्ञ रचाने का निश्चय करते हैं जिससे उनका नाम संसार में सदा के लिए अमर हो जाये। दक्ष इस यज्ञ में शिव के अतिरिक्त सभी देवताओं को आमन्त्रित करते हैं। शिव को जब इस सम्बन्ध में जानकारी मिलती है तो वे उमा से शिकायत करते हैं। उमा उत्तर देती है कि सम्भवत: यज्ञ की तैयारी में व्यस्त रहने के कारण उन्हें हमें आमन्त्रित करने का ध्यान न रहा हो। अन्त में उमा स्वयं यज्ञ में सम्मिलित होने का निश्चय करती है। वह सीधे यज्ञ-मंडप में जाकर प्रजापति से शिव को आमन्त्रित न करने की शिकायत करती है। दक्ष उत्तर देता है कि यदि वह उस भस्म रमाये जोगी को, जो गले में मुण्ड-माला धारण किये फिरता है, आमन्त्रित करता तो सबके बीच लज्जित होता। ऐसा सुनकर उमा क्रोध की अग्नि में जलने लगती है। वह तुरन्त ज्वाला का रूप धारण करके यज्ञ-कुण्ड में कूद पड़ती है और अपने को भस्म कर देती है।

नन्दकिशोर इस घटना का पूरा वृत्तान्त शिव को सुनाता है। शिव के क्रोध से कैलाश थर्राने लगता है। अन्त में शिव वीरभद्र को उत्पन्न करते हैं। वीरभद्र अपनी वीरता और पराक्रम से दक्ष के यज्ञ-मंडप का विध्वंस करता है। वह दक्ष का सिर काटकर कुण्ड की अग्नि में फ़ेंक देता है। कई अन्य देवताओं को शिखा से पकड़ पटक-पटककर बदला लेता है। इससे सारे मंडप में हाहाकार मच जाता है। विष्णु सर्वप्रथम इस विध्वंसकारी परिस्थिति को भाँप लेते हैं और स्थिति से बचने के लिए स्वयं शिव का गुणगान आरम्भ करते हैं। यह देखकर ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण, सप्तऋषि, लक्ष्मी, सरस्वती, मंगल, बुद्ध, बृहस्पति, शुक्र, शनि तथा नारद आदि शिव को प्रसन्न करने के लिए स्तुति करते हैं।

दक्ष, जिसके शरीर पर बकरे का सिर उभर आया था, इसी सिर के मुँह से शिव की प्रशंसा आरम्भ करता है। तत्काल नारद मुनि प्रसन्नता व्यक्त करने के लिए आ पहुँचते है। यहीं पर 'शिव-परिणय' का पहला भाग समाप्त होता है।

कथा के दूसरे भाग में सर्वप्रथम हिमालय की कहानी आती है। वह सन्तान-विहीन है। काफ़ी समय तक आराधना और प्रार्थना करने के उपरान्त उसके यहाँ 'सती' स्वयं पुत्री रूप में जन्म लेती है। जब वह कुछ बड़ी हो जाती है तो वह शिव को बन-बन में ढूँढ़ने के लिए निकल पड़ती है। उसे पाने के लिए 'सती' घोर

तपस्या आरम्भ करती है। एक दिन शिव अपना वेश बदलकर जोगी का रूप धारण कर लेते हैं—और गौरी के प्रेम की परीक्षा लेने जाते हैं। वह 'सती' के मन में शिव के प्रति घृणा उत्पन्न करके उसे अपने व्रत से टालने की कोशिश करते हैं। इस पर दोनों के बीच विवाद छिड़ जाता है। पार्वती के तर्क के सामने जोगी वेश धारण किये शिव हार जाते हैं और तत्काल सती को अपना असली रूप दिखाते हैं। पार्वती शिव का दर्शन पाकर गद्‌गद् हो उठती है। फिर दोनों एक सूत्र में बँध जाने का निश्चय कर लेते हैं। शिव उसे साथ लेने पर तैयार हो जाते हैं किन्तु 'सती' उनसे प्रार्थना करती है कि वह उचित रीति से उसके साथ विवाह करके उसे अपने संग ले लें। शिव वापस लौटकर अरुन्धति और नारद को हिमालय के घर बेटी का रिश्ता माँगने भेज देते हैं। इसके उपरान्त विवाहोत्सव का वर्णन आता है। पार्वती की माता मीना तथा अन्य सम्बन्धी बारात की रौनक़ देखकर आनन्दित होते हैं। जब मीना नारद से दूल्हे के स्वरूप के बारे में सुनती है तो वह दुखी हो उठती है। उसे क्रोध आता है और वह अपने कपड़े फाड़ लेती है। पार्वती माँ को ढाढ़स बँधाती है और अपने पति के गुणों और लक्षणों से उसे अवगत कराती है। मीना फिर भी सन्तुष्ट नहीं होती। वह अपनी पुत्री तथा परिवार के अन्य सदस्यों पर बरस पड़ती है। यह देखकर नारद शिव से दूल्हों जैसा रूप धारण करने की प्रार्थना करते हैं। जब शिव अपना स्वरूप प्रकट करते हैं तो मीना आह्लादित होती है। वह उपस्थित नारियों को बुलाकर शिव के स्वागत के लिए मंगल गीत गाने की प्रार्थना करती है। जब कश्मीरी वाद्य 'तुम्बखनारी' पर थाप पड़ती है तो सारा महल गीतों की मधुर ध्वनि से गुंजित हो उठता है। तत्पश्चात् पूरे सम्मान से बारातियों को विशिष्ट मंडप में बिठाकर नाना प्रकार के व्यंजनों से युक्त भोज दिया जाता है। वेद वाणी के स्वर चारों ओर गूँजने लगते हैं।

शिव परिणय

कृष्ण राज़दान की यह कृति कुछ अन्य लीला-गीतों सहित सबसे पहले श्रीनगर के एक प्रसिद्ध पुस्तक विक्रेता अली मुहम्मद एण्ड संस ने फ़ारसी लिपि में 'हरिहर कल्याण' नाम से 1913 ई. से पूर्व प्रकाशित की। तत्पश्चात् इस कृति को देवनागरी लिपि में रायल एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ बंगाल ने 1913 ई. से 1924 ई. तक छ: भागों में क्रमवार प्रकाशित कराया। यह कार्य प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान तथा भाषाविद् सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने सम्पादित किया। प्रसिद्ध कश्मीरी तथा संस्कृत विद्वान महामहोपाध्याय मुकुंदराम शास्त्री ने संस्कृत भाषा में इस कृति का अनुवाद किया। यद्यपि यह पुस्तक अलग-अलग भागों में प्रकाशित हुई फिर भी पृष्ठों की गिनती प्रथम भाग से अन्तिम भाग तक बराबर चलती रही है। इन छ: भागों की पृष्ठ संख्या छ: सौ अठारह है। प्रत्येक पृष्ठ का अनुवाद उसके

सामनेवाले पृष्ठ पर दिया गया है। पुस्तक में अच्छे काग़ज़ का प्रयोग न होने से केवल साठ सत्तर वर्षों में ही इसकी दशा काफ़ी बिगड़ चुकी है। यह पुस्तक अब कश्मीर के दो एक पुस्तकालयों में ही उपलब्ध है और वह भी जीर्ण-शीर्ण हालत में। अतः इन भागों का क्रम, प्रकाशन वर्ष, पृष्ठ संख्या और लीलाओं की संख्या का ब्योरा देना उचित जान पड़ता है।

भाग	पृष्ठ	लीला-गीतों की संख्या	प्रकाशन वर्ष
1	88	20	1913 ई.
2	96	18	1914 ई.
3	96	22	1921 ई.
4	90	24	......
5	96	26	1924 ई.
6	150	34	1924 ई.

इस ब्योरे से स्पष्ट होता है कि पुस्तक का तीसरा भाग कोई सात वर्ष के अन्तराल के पश्चात् प्रकाशित हुआ। पाँचवाँ तथा छठा भाग एक ही वर्ष में प्रकाशित हुए। 1921 में मुकुंदराम शास्त्री का देहान्त हुआ। पुस्तक के अन्तिम भाग की भूमिका में सर जार्ज ग्रियर्सन ने शास्त्री जी की विद्वत्ता, उनके कश्मीरी भाषा का जानकार होने और शिव-परिणय' का छायानुवाद करने में सहायता देने के लिए आभार प्रकट किया है। साथ ही ग्रियर्सन ने उन्हें कश्मीरी शब्दकोश का ढाँचा तैयार करने के लिए भी धन्यवाद दिया है। यह आभार इस बात का द्योतक है कि ग्रियर्सन इस कार्य को कितनी महत्ता प्रदान कर रहे थे। यद्यपि जार्ज ग्रियर्सन ने कवि के सम्बन्ध में विशेष रूप से नहीं लिखा है किन्तु उनका राज़दान के घर जाकर शिव-परिणय के बारे में विचार-विमर्श इस बात की ओर संकेत करता है कि रचना उनकी दृष्टि में कितनी महत्त्वपूर्ण थी।

यहाँ यह कहना असंगत न होगा कि शिव-परिणय को प्रकाशित करके रायल एशियाटिक सोसाइटी ने सराहनीय कार्य किया है। सोसाइटी द्वारा जिन भाषाओं की कृतियाँ उस ज़माने में प्रकाशित हुई वह थीं : संस्कृत, प्राकृत, राजस्थानी, कश्मीरी, हिन्दी, तिब्बती, अरबी तथा फ़ारसी। इन भाषाओं में कश्मीरी को शामिल करना इस बात की ओर संकेत करता है कि आज से लगभग अस्सी वर्ष पूर्व कश्मीरी भाषा की महत्ता की ओर विदेशी विद्वानों का पूरा ध्यान था। यह भी सही है कि वे इस भाषा को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लाने के लिए प्रयत्नशील थे। काश, साधारण कश्मीरी को इस बात का बोध होता। इस पुस्तक के प्रत्येक भाग का मूल्य मात्र बारह आने (आज के पचहत्तर पैसे) रखा गया था।

अली मुहम्मद पुस्तक विक्रेता द्वारा 'शिव परिणय' का हरिहर कल्याण के नाम से फ़ारसी लिपि में प्रकाशन दिखाता है कि कवि अपने ज़माने में ही लोकप्रिय हो चला था किन्तु किसी आलोचक के उपलब्ध न होने से इस कृति का सही मूल्यांकन हो न पाया। अब इस कृति के कुछ उदाहरण सानुवाद दिये जाते हैं।

पार्वती की माता मेनका दूल्हे के आगमन का सन्देश देती है तो वह कहती है :

राजहंस मेरे घर आया
पूर्ण हुई मेरी अभिलाषा
पर्वत पर्वत रमन करे है
पहने हीरों की माला
कैसे वसन पहनकर आया !

इस शुभ उत्सव में भाग लेने और अपनी श्रद्धा का प्रदर्शन करने के लिए आकाश से अप्सराएँ उतर रही हैं। उनके साथ देव-बालाएँ भी हैं। साथ ही वन-कन्याएँ भी स्वयं उपस्थित हो गयी हैं। परी-जगत में कोई नारी कैसे रह पायेगी आज, शिव का आवाहन जो है :

योगिनियाँ, बालाएँ नभ की
श्रद्धा से वेदी पर आकर,
गाने लगीं विवाह के गीत
परी-जगत में कोई नारी,
रह पायेगी कैसे आज
आवाहन शंकर का है।

प्रभु-वन से शिव रूपी हरा शुक निकल आया है और वह हिमालय पर्वत की सुपुत्री को, जो एक वन-सारिका के समान सुन्दर है, वरने चला है :

बै .च्वल मृत्युंज़ै ने ज़यि सूति
दयि संजि नयि मँज़ह तोता द्राव
हीमाल - पर्वत ने वन - हारे
महाराज़ राज़ह क्वमारे आव।

—**कुलियात,** पृ. 201

मृत्युंजय की जय से निर्भय
प्रभु-वन से निकला इक तोता।
हिमगिरि की वन-सारिका के लिए।
पार्वती का दूल्हा आया।

हमारे पुष्पोद्यान में एक सुन्दर कोना था और इसी कोने में, एक कमल के समान वह (दूल्हा) आकर बैठ गया। रुष्ट हुआ 'पोश्नूल'[1] पक्षी बीच फुलवारी के प्रविष्ट हो गया। लो ! राजकुमारी का दूल्हा आया।

सॉनिस बागस मंज़ ओस गोशा
गोशस प्यठ पम्पोशाह ब्यूठ
रोशि चाव पोशनूल मंज़ पोशिवारे
महाराज़ राज़ह क्वमारे आव

—**कुलियात**, पृ. 201

पुष्पोद्यान में सुन्दर गोशा
उसमें इन्दीवर - सा बैठा,
रुष्ट पोश्नूल बीच उपवन में
दूल्हा पार्वती का आया।

दूल्हा कैसा है ? इस बारे में प्रायः हर देश के विवाहोत्सवों में उपस्थित लोगों को आकांक्षा रहती है। कवि ने प्राकृतिक उपमाओं द्वारा दूल्हे का सुन्दर चित्र इस प्रकार खींचा है :

पम्पोशि पाद वुछ सादह शेहज़ादा
बागस मंज़ नागह-रादा ज़ाव
आकाशि अमृथ प्यौ दारि दारे
महाराज़ह राज़ह क्वमारे आव

—**कुलियात**, पृ. 201

पद्म-पदों वाला शहज़ादा
ज्यों बगिया में सोता फूटा
नभ से गिरी अमृत धाराएँ
दूल्हा पार्वती का आया।

मंगल-गीत गाने वाली नारियों में कवि ब्रजवासिनियों को सम्मिलित करना कैसे भूल सकता है। विवाहोत्सव का दृश्य इतना सुन्दर है कि इसे देखने के लिए गगन-सुन्दरियाँ उतर चुकी हैं वन-सुन्दरियाँ गीत गाने निकल पड़ी हैं। ये सुन्दरियाँ इसलिए शिव का गुण-गान कर रही हैं कि काश ! महादेव उनके वचन कान देकर सुनें :

---

1. एक सुन्दर पक्षी, जिसकी दुम लम्बी होती है

वनचे विगिन्ये वनवनि द्राये
आकाशि प्यठह वछ़ह अछ़ रछ़ ब्वन
ग्वन छस वनवान् द्यव कन दारे
महाराज़ह राज़ह क्वमारे आव

—**कुलियात**, पृ. 201

मंगल गीत वन-परियाँ गातीं
गगन-सुन्दरियाँ उतर पड़ीं
गुन गाती हैं, सुने देवता
पार्वती का दूल्हा आया।

ऊपर से अप्सराएँ गाती-बजातीं उतरीं और इच्छापूर्वक गोपियों और ग्वालनों में सम्मिलित हो गयीं और हिमालय के मंडप में बैठ गयीं क्योंकि आज सर्वशक्तिमान का आवाहन है। देव कन्याएँ दौड़ती हुई आयीं और निर्गुण के गुण गाकर अश्रु बहाने लगीं :

हे॑रि वछह अछह रछ़ वायान त गायान
यछ़ि गूपियन त गूरिबायन सूति
हीमालपर्वत निस देवान खानस
सर्वशक्तिमानस छु आवाहन
विगनि आयि दीव कन्यायि ह्यथ लारन
बख़्ति बावनायि सूति म्वख़्तह हारन
वननि लजि ग्वन न्यर्ग्वन ग्वनहवानस
सर्वशक्तिवानस छु आवाहन।

—**कुलियात**, पृ. 203

गायन करती अप्सराएँ उतरीं
साथ गोपियों, ग्वालन के
बैठ हिमालय के मंडप में
योगिनियाँ, देव - कन्याएँ दौड़ीं
लगीं गिराने भक्ति - भाव से,
आँखों से वे मुक्ता - कण
गाने लगीं गुण निर्गुण के
आवाहन शंकर का है!

सभी बड़े देवता शिव की बारात में सम्मिलित हैं, किन्तु देवताओं में आज जिसकी शोभा सर्वोपरि है वह हैं शिव, और उनके दर्शन के लिए प्रेम-द्वार के पट खोल देने की आवश्यकता है।

प्रेम-द्वार के पट खोल दे
देख सवारी शिव की रे
बने इन्द्र हैं स्वयं पुजारी
'अन्न-देवता' भण्डारी
'वरुण' थके हैं जल ला ला के
देख सवारी शिव की रे !

मौलिक शिव-पुराण में पार्वती और जोगी का संवाद कथा के अन्त में दिया गया है किन्तु कृष्ण राज़दान ने इस संवाद को उस समय दिखाया है जब शिव विवाह से पूर्व पार्वती के प्रेम की परीक्षा लेने आते हैं। जोगी का वेश धारण किये शिव पार्वती से कहते हैं :

म्य छुम फेरान् च़ छख ना क्याह् स्वन्दर माल
वनै वयाह् छुइ च़य गोमुत हाल बेहाल
म्य छुम फेरान् च छख ना सिर्य न्यर्मल
कमी कोरनै च़्य युथ छ़ल रोटुथ जंगल
म्य छुम फेरान् च़ छख ना तेज़ वुज़मल
गछ़ख मा वोत्र च़ ना हक़ मीगह् सई तल

च़ छख कमि प्रेमह् बागच यिछ यम्बरज़ल
म्य छुम फेरान् बम्बूरन कमि कड़ई कल

—**कुलियात**, पृ. 165-66

हे सुन्दरी मैं दुखी हूँ
दशा हुई क्या तेरी है
लगती हो सविता-सी निर्मल
किसने छला ? चली बनों में
तुम चपला-सी चमचम उड़ती
ग्रसे न मेघ तुम्हें हे बाले !
सुन्दर नर्गिस तुम उपवन की
किस भौंरे ने तुम्हें छला है

और यह सुनकर पार्वती निर्भीक होकर उत्तर देती है। जोगी तुम कपटपूर्ण बात करते हो। तुम रुई में मैले जाले मिला रहे हो। घोर माघ में हिम बेचने चले हो। तेरी बात सुनने योग्य नहीं :

बात कपटपूर्ण हो करते
रुई में जाले मिलवाते
घोर माघ में बर्फ़ बेचते
यह तो निरा अनर्थ है साधो !
मिश्री की छोटी डलिया से
होगा मधुर सरोवर कैसे
बोलो बात सुनूँ मैं कैसे ?

—**कुलियात**, पृ. 167 का भावानुवाद

कथा में बीच में शिव से सम्बन्धित कई गेय स्तुतियाँ आती हैं। भक्त्यामृत के ये छोटे किन्तु मीठे झरने अपनी मिसाल आप हैं। कुछ पद्य देखिये :

गिरते निर्झर शिव शिव करते
पवन वेग से माला जपते
गूँज उठे पल्लव भी हर हर !
हे शंकर, शम्भू गंगाधर !

अथवा

युक्त हो तुम सभी शुभ गुणों से
हे सदाशिव तुम्हारी विजय हो
रूप निर्मल तेरा ढूँढ़ते हैं
तेरी देह का भला क्या कहें हम
फूल लजा रहे हैं उसी से
हे सदाशिव तुम्हारी विजय हो।

शिव-विवाह में स्थान-स्थान पर कृष्ण को याद किया गया है। इस विवाह में कृष्ण राज़दान राधा-कृष्ण के विवाहोत्सव में सम्मिलित होने की बात भोले भाले अन्दाज़ में पेश करते हैं :

कहे यशोदा नन्द-ग्वाल से
सिरजनहार हमारा जाया
अवरोधित थे गुण निर्गुण में
उनको सन्मुख किया कृष्ण ने
भीतर से खुद बाहर लाकर।
राधा-कृष्ण पधारे कहते।

कृष्ण आये हैं तो उनकी लीलाएँ भी कवि को याद आ रही हैं। कृष्ण गोवर्धन-पर्वत को उँगली पर इस प्रकार उठाते हैं जैसे एक सूखा पत्ता उँगली पर पवन द्वारा

आ जमे। और इस वीरता के प्रदर्शन के साथ-साथ कृष्ण का नाम मन रूपी अँगूठी पर अंकित किया जा रहा है गोपियों द्वारा :

कृष्ण उठाये गोवर्धन
ज्यों उँगली पर पर्ण पवन
वही नाम मन-मुद्रिका पर
करती रहतीं अंकित हम।
राधा-कृष्ण पधारे कहते।

कृष्ण की वंशी का स्वर सुनते ही गोपियों का मन निद्रा में खटक उठता है है और वे निर्वसन हो अपने मकान के आँगन में बरबस निकल पड़ती हैं। इसी कल्पना को राज़दान वाणी देकर अपनी कला की उत्कृष्टता का उदाहरण हमारे सामने ले आते हैं :

न्यथननि द्रायि असि मंज़ आंगनन
म्वर्ली शबद याम कनन चाव
न्यंद्रे हच़नई व्वठ कॅड मनन
वनन छि राधा-कृष्ण आव।

—**कुलियात**, पृ. 209

निकल पड़ीं निर्वसन आँगन में
कानों में वंशी स्वर बजते।
निद्रा में मन हमरा खटके।
राधा-कृष्ण पधारे, कहते।

तत्पश्चात् नर्गिसी सुगन्ध फैलने लगती है और कवि कहता है रुष्ट भौंरे ! आँखें आँखों में गाड़ ले, तन को तन से मिलाकर परमानन्द की प्राप्ति कर ले :

छन रही है सुगन्ध नर्गिसों की
रुष्ट भौंरे, तू आनन्द ले ले
मिले नैन से नैन, तन तन से।
राधा-कृष्ण पधारे, कहते।

तत्काल ही वे अपने इष्टदेव की स्तुति आरम्भ करते हैं कि हे सदा कल्याण करनेवाले देव ! तुम्हारी विजय हो। ऐसे इष्टदेव के सौन्दर्य से फूल लज्जित हो रहे हैं और ऐसे ही आनन्दमय देव पर कवि अपना तन-मन अर्पण करने पर तैयार हो जाता है। वह अपने आराध्य देव से कहता है—हे देव ! जो भी वस्तु तुम माँग लो, मैं उसे तुम पर अर्पित करूँगा :

युक्त हो तुम सभी शुभ गुणों से
हे सदाशिव तुम्हारी विजय हो
रूप निर्मल तेरा ढूँढ़ता हूँ
तेरी देह का भला क्या ही कहना
फूल लजा रहे हैं उसी से
हे सदाशिव ! तुम्हारी विजय हो।

और

स्वप्रकाशित आनन्दमय तुम
वार दूँ अपना तन मन तुम्हीं पर
माँग लो तुम जो अर्पित करूँ मैं
हे सदा शिव तुम्हारी विजय हो।

कश्मीरी पंडितों के विवाहोत्सवों पर गाये जानेवाले कृष्ण राज़दान के रास गीत अपनी अलग छटा लिए हुए हैं। ऐसे अवसर पर नन्दलाल स्वयं रास खेलने आते हैं और कवि रास खेलने के लिए मण्डल बनाने का विनम्र किन्तु साग्रह निवेदन करते हैं। वे कहते हैं :

नन्दलाल आवै गिंदने रास,
आरह करिवे आरै
आरवल दॅज़ लोलह नारै
आर रॅसि कॅर वनवास
आरकॅच़ फीर आरह आरै
आरह कॅरिवे आरै।

—**कुलियात**, पृ. 199

नन्द का नन्दन रास रचाये
घेरा बनाओ री घेरा बनाओ
प्रेम-ज्वाल में जली आरवल[1]
मिला उसे जंगल का वास
नदी नदी फिरती दुखियारी
घेरा बनाओ री घेरा बनाओ।

रास-गीत कृष्ण का, परन्तु कवि को इसमें भी शिव की याद छटपटाती है। वह उसे हरमुख और हरिद्वार में ढूँढ़ने का आदेश देते हैं :

1. नदी किनारे खिलनेवाला एक कश्मीरी फूल

हरम्वख तै हरदवारै
वनि कॅडितोन सनियॉसि
सूति ज्ञानह त स्व व्यचारै
आरह कॅरिवे आरै

—**कुलियात,** पृ. 202

हरमुख और हरिद्वार में
खोजो तुम उस योगी को
शुभ्र ज्ञान से सुविचार से
घेरा बनाओ री ! घेरा बनाओ !

उपदेश की लय फिर उभरती है और कवि कहता है कि यदि मनुष्य को दुःख-सागर से कोई पार उतार सकता है तो वह दई का ही नाम है। हज़ारों जोड़ने से तुम्हें क्या मिलेगा। ईश्वर के नाम का स्मरण ही तुम्हारी सम्पत्ति है अतः हज़ारों को तुम राख के बराबर जानो :

लारि क्याह यॅमि सम्सारै
सासन ति कॅरिवे सास
अख दयि नाव तारह तारै
आरह कॅरिवे आरै

—**कुलियात,** पृ. 200

इस दुनिया से लेना क्या है
राख समान हज़ारों जान
एक ही नाम दई का तारे
घेरा बनाओ री घेरा बनाओ।

शंकर-भक्त राज़दान 'शिव-परिणय' की स्तुतियों में अपने इष्टदेव को सादर निमन्त्रित करता है और पर्वत-पर्वत पर उसे खोजने का इच्छुक है। इसी आराध्य देव के लिए वह बन-बन में फूल एकत्र करने चला है :

पर्वत पर्वत खोजूँ तुमको
तुम्हें निमन्त्रण मेरा सादर
तेरी पूजा में मन लाकर,
सत् चित् आनन्द तुमको ध्याऊँ
कानन-कानन फूल समेटूँ
तेरी जय हो मेरे शंकर!

कवि भव-बाधाओं से दूर रहने का इच्छुक है। वह अपना 'स्व' उस महाशक्ति को समर्पित करना चाहता है। उसे चिन्ता है कि सांसारिक संकल्प-विकल्प उसके ध्यान में बाधा डाल रहे हैं :

संकल्प हटा रहे हैं ध्यान
विजित नहीं होते हैं प्राण,
भव-बाधा में पड़ूँ तो कैसे
तुझे निमन्त्रण तुम्हीं महान।

शिव द्वारा उनके भक्तों को जो शक्ति-पात प्राप्त होता है इसकी आकांक्षा कवि को चिन्तित कर रही है। काश! उसका इष्टदेव स्वयं कृपालु होकर उस पर दया करे और उसे उस महाशक्ति की समीपता प्राप्त हो। इसीलिए वह भावना के निर्झर में प्रेम के जल का अभिलाषी है :

प्रेम का जल दो भाव के निर्झर
हे भक्तों के मीत महान,
कृष्ण[1] तेरी कतरन से निकले
पुनर्जन्म नहीं हो कल्याण।

कश्मीरी पंडितों की विवाह-पद्धति में जो मूल्यवान क्षण आते हैं उनमें पुष्प-पूजा अत्यन्त आकर्षक है। इसमें पति-पत्नी हाथ मिलाकर मंडप में बिठा दिये जाते हैं। उनके ऊपर दो व्यक्ति सुर्ख रंग का एक शाल फैलाये खड़े रहते हैं। मंत्रोच्चारण के साथ-साथ सभी संबंधी पुष्प चढ़ाते हैं। कवि कृष्ण राज़दान ने इन क्षणों का गहरा अनुभव प्राप्त करके कुछ ऐसे मार्मिक गीत लिखे हैं जो उनकी अति उत्तम रचनाओं में सम्मिलित होते हैं। इनमें कवि का हृदय द्रवित हो उठा है।

आज उस शिव की 'पुष्प-पूजा' होने जा रही है। उनका रथ स्वयं सूर्य वहन कर रहे हैं। यह गगन उसके ऊपर एक वितान या शामियाने के समान तना हुआ है। उसके महल के वातायनों में मोतियों के स्थान पर तारे जड़े हैं। उस पर आकाश से पुष्प वर्षा की जा रही है :

म्वख्त कनि तारख छिस तापदानस
छमै ईशानस पोशि - पूजा
आकाश पोशि वर्षुन हनि - हनि छुस
रथबान कनि छुस सिर्य दिवता
सायबान बन्योमुत छुस आसमानस
छमै ईशानश पोशि पूज़ा॥

—**कुलियात**, पृ. 234

---

1. कवि कृष्ण राज़दान

तारे जड़े झरोखे जिसके
उस ईशान की पूजा है
नभ से फूलों का वर्षण है
सविता करता रथ वहन है
गगन वितान तना है जिस पर
उस ईशान का पूजन है।

शिव जैसे देवता के लिए गंगा नदी गंगासागर[1] लिये खड़ी है। दीवाली उसके लिए दीप सजा रही है और स्वयं लक्ष्मी उसका आँचल चूम रही हैं।

गंगा-सागर ह्यथ छस गंगा
वुद ज़ालान छस 'दीपमाला'
लक्ष्मी मीठि छस दिवान दामानस
छमै ईशानस पोशि पूज़ा।

—**कुलियात**, पृ. 234

गंगा-सागर लिए है गंगा
ऊद जलाती दीवाली
आँचल जिसका चूमे लक्ष्मी
उस शंकर की पूजा है।

इस शुभ अवसर पर सामान समेटने के लिए चित्रगुप्त जैसे देवता खड़े हैं। और तो और स्वयं इन्द्र अपनी इन्द्रसभा छोड़कर चँवर झुला रहे हैं। दान, दक्षिणा देने के लिए धर्मराज खड़े हैं :

चित्रगुप्त ताह छुस करान सामानस
यंदराज़ह स्वरछल बरदार छुस
दर्म-राज़ह थोवमुत प्यठ धर्म दानस
छमै ईशानस पोशि - पूज़ा।

—**कुलियात**, पृ. 234

चित्रगुप्त सामान समेटे
मोर-पंख खुद इन्द्र झुलाये
धर्म - राज हैं दायक जिसके
उस शंकर की पूजा है।

---

1. जल-पात्र

ऐसे ही सुन्दर गीतों और स्तुतियों ने शिव परिणय को एक ऐसी कृति बनाया है जो एक प्रेमाख्यान के सभी तत्त्व न रखते हुए भी श्रद्धा और भक्ति के अमर स्रोत बहा रही है। इस रचना की सभी स्तुतियाँ गेय हैं। इनका माधुर्य सुन्दर शब्द-चयन और कोमल भावनाओं पर आधारित है।

पुराणों के इस आख्यान को ठेठ कश्मीरी परिवेश के साथ कृष्ण राज़दान ने एक अत्यन्त लोकप्रिय देवता और सक्षम देवमाला को कश्मीरी साहित्य में उपस्थित कर साहित्य और भाषा, दोनों का विस्तार किया है। भक्त राज़दान ने इस कृति में ऐसे रत्न-दीप जलाये हैं जो भावना, शिल्प और अभिव्यक्ति के ऊँचे माध्यम के कारण सदा सर्वदा के लिए अपना प्रकाश फैलाते रहेंगे।

सूफ़ी दर्शन का प्रभाव

डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार सूफ़ी शब्द का प्रयोग नवीं शताब्दी ईस्वी के आरम्भ में हुआ। यह वाद अपने चरित्र को पवित्र करने पर बल देता है। नैतिक आचरण द्वारा भीतरी और बाहरी जीवन का उद्धार कर परम सुख प्राप्त करना सूफ़ीमत का ध्येय रहा है। परमानन्द के लिए आत्मा की पवित्रता अपेक्षित है।

कश्मीर में चिश्ती, नक़्शबंदी, क़ादिरी तथा सुहरावर्दी सम्प्रदायों द्वारा सूफ़ीवाद की प्रबल विचारधारा का प्रसार हुआ। इस विचारधारा ने यहाँ के जन-साधारण को अपनी ओर शीघ्र ही आकर्षित किया। परतंत्रता के तले दबे दरिद्र लोगों के लिए यह दर्शन रामबाण सिद्ध हुआ। इसके द्वारा सारे देश की धरती पर सादगी, मानव प्रेम और भक्ति की धाराएँ फूटीं। चौदहवीं शती में सूफ़ीवाद का कश्मीर में प्रचार-प्रसार आरम्भ हुआ। इस विचारधारा को कविता द्वारा शक्ति प्रदान करनेवाले कवि अठारहवीं शताब्दी में आगे आये। उन्नीसवीं शताब्दी में सूफ़ीवाद से प्रभावित कविता ऊँचाइयों को छूने लगी।

जिस समय कृष्ण राज़दान ने लीलाकाव्य द्वारा कश्मीरी साहित्य में अपना स्थान बनाया उस समय सूफ़ीवाद से प्रभावित कई सशक्त कवि कश्मीरी काव्याकाश पर चमचमा रहे थे। इन कवियों में स्वच्छ क्राल, शाहग़फूर, नूयाम साहिब, शम्स फ़कीर, रहमान डार, अहमद बटवारी तथा वाज़ह महमूद मुख्य हैं।

सूफ़ीवाद के प्रसार से पूर्व कश्मीरी कविता पर शैव-दर्शन का प्रभाव प्रख्यात कश्मीरी कवयित्री लल्लेश्वरी और शेख़ नूरुद्दीन वली (नन्द ऋषि) पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। ललेश्वरी ने अपने सम्पूर्ण काव्य को शिव की भक्ति और उसके गुणों के प्रसार के लिए समर्पित किया। उसकी कविता जो वाकों[1] पर आधारित है, सूफ़ीवाद और शैव-मत का विलक्षण संगम है।

1. एक काव्य विधा

शिव छुइ थलि थलि रौज़ान
मौ ज़ान ह्योंद त मुसलमान
त्रुक ऐ छुख त पान परज़ान
स्वै छै साहिबस सूति ज़ॉनी ज़ान।

—लल-वाक्य

स्थल स्थल में शिव व्याप्त हैं
हिन्दू मुस्लिम भेद न मान
हो चतुर, अस्तित्व समझ ले
वही साहिब की है पहचान।

मानव चाहे किसी भी धर्म से सम्बन्धित हो, उसे मनुष्य समझो और हर प्रकार के द्वैतभाव से दूर रहो। इसी थाती को नन्द ऋषि ने आगे बढ़ाया। वे कहते हैं :

अकिस मॉलिस माजि हँद्यन्
तिमन दॅइ त्रॉविथ त क्याय
मुसलमानन क्याव ह्यन्द्यन
कर बन्दन तोषि ख्वदाय।

—कुलयाते शेखुल आलम

एक ही मात पिता के जाये
इन में फूट कहाँ से आये
मुसलमान, हिन्दू दोनों पर
सदा प्रसन्न रहे भगवान।

सूफ़ी कवियों ने शैव दर्शन और सूफ़ीवाद की ऐसी ही पवित्र मान्यताओं को अपनी कविता द्वारा परिवर्धित किया। पवित्र भावना, उच्चादर्श, जीवन को सादगी से बसर करने की प्रबल इच्छा और संगीत-प्रेम ने इन कवियों को लोकप्रिय बनाया और जनसाधारण ने इनके काव्य से प्रेरित होकर नैराश्य से बचने और अपने जीवन को सुधारने का काम किया। सन्तोष और सहिष्णुता प्राप्त करके लोगों ने आर्थिक असन्तोष को सहन किया।

सूफ़ीवाद से प्रभावित काव्य में साम्प्रदायिक मेल-मिलाप, धार्मिक सहनशीलता तथा प्रेम के विस्तृत स्वरूप की व्याख्या स्थान-स्थान पर मिलती है। फ़ारसी तथा संस्कृत से उधार ली गयी शब्दावली, सुन्दर प्रकृति से उपजी पवित्र भक्ति और रहस्यवाद की व्याख्या भी इस काव्य में सुलभ है।

सूफ़ी कवियों ने इन्हीं आयामों द्वारा कश्मीर की तप्त धरती को शांत किया।

इस धारा के कवियों ने जहाँ सूफ़ीवाद की पूर्ण व्याख्या की, वहाँ हिन्दू शास्त्रों में वर्णित देवताओं का ज़िक्र भी इनकी कविता में मिलता है। शिव से सम्बन्धित स्थानों और क्रिया-कलापों का ज़िक्र इनमें से कई मुख्य कवियों ने किया है। इनकी कविता में हरमुख में शिव का दर्शन पाने की ललक, इन्द्र-सभा में बजते वाद्यों की झंकार और 'सोऽहम' से मिलने की उत्कट इच्छा पायी जाती है।

सूफ़ी कवि शाहग़फ़ूर कहते हैं कि इस जग में जन्म पाके लेना क्या है। उसी सोऽहम का ध्यान करके जीवन को सफल बनाओ। ब्रह्मा, विष्णु और महेश को खोजो। मानव को छोड़कर महेश की तलाश आरम्भ करो। ईश के साथ मिलकर उसी जैसा बनो :

योँत यिथ ज़नमस केंह छुनह लारुन
दारनायि दारुन सूहम सू
ब्रह्मा, व्यषिन, महीश्वर गारुन
दारनायि दारुन सूहम सू
पान है खटनै, जान ह्यख मारुन
दारनायि दारुन सूहम सू
बशर त्रॉविथ ईशर गारुन
ईशरस सूति रोज़ सपदख सुई
ईशर सपदुन गौ शरीर मारुन
दारनायि दारुन सूहम सू।

—शाह ग़फ़ूर[1]

यहाँ जन्म ले पाना क्या है
ध्यान उसी 'सोऽहम' का कर लो
ब्रह्मा, विष्णु, महेश को जानो
ध्यान उसी 'सोऽहम' का कर लो
तन पीटोगे, यदि रूप छिपायें
ध्यान उसी 'सोऽहम' का कर लो।
मानव छोड़ महेश्वर खोजो
ईश से मिलकर ईश बनो
ईश्वर होना, खोना तन को
ध्यान उसी 'सोऽहम' का कर लो।

---

1. शाह ग़फ़ूर—सूफ़ी शाइरी, प्रथम भाग, पृ. 99

इसी प्रकार शम्स फ़कीर[1] अपनी कविता में हरमुख पर्वत पर उस महाशक्ति के दर्शन प्राप्त करने का संकेत करते हुए कहते हैं :

ज़ॉनि वालि करतह ज़ॉनि यार
हरम्वख वुछ दीदार
पर्दह ज़ाल अज़ दर्द नार
हरम्वख वुछ दीदार।

—**सूफ़ी शाइरी**, प्रथम भाग, पृ. 326

ज्ञानी हो तो यार को जानो
हरमुख में दर्शन कर लो
प्रीत की आग से परत जला लो
हरमुख में दर्शन कर लो।

हाल ही में मृत सूफ़ी कवि अहद ज़रगर की कविताओं और ग़ज़लों में पार्वती, हरमुख और गोपाल का बड़ी ही श्रद्धा से वर्णन किया गया है :

गूपॉलि बाल छस सनियॉसि लालो
बन्दरन वोॅन छस दिवान
हरम्वख बूज़मै चोन क़ील क़ालो
हा व्वलो बाल छस प्रारॉनी।

—**सूफ़ी शाइरी**, भाग 2, पृ. 323

बाला मैं गोपाल की ओ संन्यासी लाल
बन्दर बन्दर तुझ को खोजूँ
हरमुख में है वास, सुना
आओ, प्रतीक्षा में हूँ बाला।

इस पद्य में भी कृष्ण राज़दान की तरह कृष्ण और शिव को एक करने की भावना सजग हो उठी है। अन्य कई सूफ़ी कवियों ने शास्त्रीय उक्तियों का भरपूर प्रयोग करके आपसी प्रेम की पीठिका तैयार की है। ऐसी कविताओं को कश्मीरी भाषा में 'शास्त्रीय क़लाम' की संज्ञा दी गयी है।

अगले अध्याय की भूमिका के तौर पर यह कहना आवश्यक है कि यह सारा साहित्य जिसे सूफ़ीवाद की मज़बूत धरातल का आधार मिला, कृष्ण राज़दान के युग के आस-पास ही लिखा गया। इसी पृष्ठभूमि में कवि राज़दान ने लीला-गीतों की नोक-पलक सँवारी।

---

1. एक प्रसिद्ध कश्मीरी सूफ़ी कवि

कश्मीर की सबसे बड़ी सांस्कृतिक थाती रही है समीकरण और भिन्न-भिन्न विचारधाराओं को आपस में मिलाकर मानव मूल्यों की रक्षा करना। कवि राज़दान ने इस प्रक्रिया को बराबर जारी रखा। उनके काव्य में अन्य धर्मों के अनुयायियों और उनके महापुरुषों और संतों तथा विद्वानों के प्रति यथायोग्य आदर की भावना मिलती है जिससे ज्ञात होता है कि उन्होंने अन्य धर्मों के विचारकों को पढ़ा और अच्छी प्रकार समझा था।

लीला-काव्य

हिन्दी भाषा के कश्मीरी कवि प्रो. रतनलाल शांत का यह कथन पूर्ण सत्य है कि भक्ति और सर्वसाधारण द्वारा किये गये पूजन में ख़ासा अन्तर है। पूजन तब भक्ति का रूप धारण करता है जब एक भक्त ईश्वर की सामान्य विशेषताओं से ज़रा हटकर उसे अपने व्यक्तिगत अनुभवों से महसूस करने लगता है। वह उसे अपने निजी जीवन में प्रविष्ट करके अपना बना लेता है। वह उसे अपने बुरे-भले का साक्षी बना लेता है। ऐसे में एक भक्त अपने इष्टदेव से असम्भव आशाओं की पूर्ति भी चाहता है, और कभी-कभी उसे मित्र, भाई अथवा प्रियतम बनाकर पूजता है। इस प्रकार की भक्ति में ईश्वर निजी सम्पदा हो जाता है।

चौदहवीं शती में भक्ति की यही भूमिका, भारत में कश्मीर से लेकर बंगाल तक अपना स्वरूप सँवारती है। पूर्व में 'विद्यापति' का कृष्ण-काव्य; उत्तर और पश्चिम में कबीर की साखियाँ तथा सूरदास और तुलसीदास का भक्तिपरक काव्य; जायसी आदि कवियों का सूफ़ीवाद से प्रभावित प्रेम-काव्य और कश्मीर में लल्लेश्वरी और नन्द ऋषि के दार्शनिक काव्य से लगता है जैसे सारा देश भक्ति की गुंजन से गूँज उठा हो।

कश्मीर में भक्ति-काव्य को लीलाकाव्य की संज्ञा देना उचित रहेगा। इस काव्य की जड़ें हमें कश्मीर के विख्यात संस्कृत कवि 'क्षेमेन्द्र' में मिलती हैं। सत्रहवीं शती में कश्मीरी भाषा में सर्वप्रथम साहिब कौल (मृत्यु 1642) ने 'लीला-कृष्णावतार' की रचना की। यह रचना कृष्ण के जीवन चरित को लीला-गीतों द्वारा प्रस्तुत करती है। यह मुग़ल शहंशाह जहाँगीर के ज़माने की बात है। प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान बूलर संस्कृत पोथियों की खोज में 1875 में जब कश्मीर आये तो 'कृष्णावतार' की एक पाण्डुलिपि अपने साथ ले गये।

कोई दो सौ वर्ष उपरांत उन्नीसवीं शती में कृष्ण राज़दान के जन्मस्थान से केवल बारह किलोमीटर दूरी पर कुरी गाँव में प्रकाश राम ने कश्मीरी रामायण

की रचना की। इस सम्बन्ध में हम पहले भी बता चुके हैं।

अब्दुल अहद आज़ाद[1] के अनुसार कश्मीरी रामावतार तथा लव-कुश चरित का प्रकाशन 1915 ई. में 'प्रताप स्टीम प्रेस' श्रीनगर से हुआ। इसकी लिपि फ़ारसी थी। 1930 ई. में सर जार्ज ग्रियर्सन ने रोमन लिपि में इस पुस्तक का एक संस्करण रॉयल ऐशियाटिक सोसाइटी आफ़ बंगाल (कलकत्ता) द्वारा प्रकाशित कराया। 1965 ई. में जम्मू और कश्मीर कल्चरल अकादमी ने प्रो. बलजी नाथ पंडित द्वारा इस रामायण को संकलित कराकर छपवाया।

इस रामायण में शिव-पार्वती के माध्यम से राम-कथा को प्रस्तुत किया गया है। यही वह कृति है जिसमें हमें भक्ति-परक कश्मीरी लीला-गीतों का विकसित स्वरूप मिलता है। दो-एक उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :

रामचन्द्र हरि नारानह
लागै दानह दानै ही
चऻई छुख माजि ज़ामुत राज़ह
चऻई छुख वाजि निगीनह
चऻई छुख पानह दयावानह
लागै दानह दानै ही

—**कॉशुर रामायण**—बलजीनाथ पंडित, पृ. 198

रामचन्द्र हरि नारायण
जूही के पर्ण तुझे अर्पित
तुम जन्मे माता से राजा
तुम मुन्दरी के शोभित नग
तुम हो स्वयं दयावान
जूही के पत्ते तुझे अर्पित।

ठीक इसी छंद का उपयोग करके कृष्ण राज़दान ने पार्वती द्वारा शिव के प्रति प्रेमोद्गार प्रकट करने के लिए एक सुन्दर लीला गीत की रचना की। इस गीत के कुछ अंश देखिये :

दया कर म्य दयावानह
ब छस पानह दयालू
चऻई छुख ड्यकह प्यठुक टिकह
ब छस बुथि प्यठुक तीज़

1. प्रसिद्ध कश्मीरी कवि

च़ छुख दोह त बु छस राथ
च़ आकाश त बु बुतराथ
च़ छुख दॉन, बु छस दानह
ब छस पानह दयालू।

—**कुलियात**, पृ. 155

दया[1] करो दयालु मुझपर
मैं भी स्वयं दयालु हूँ
तुम माथे की बिंदी हो
मैं मुखड़े की उजास
तुम दिन, मैं रात
तुम आकाश, मैं धरती
तुम अनार, मैं भीतर का दाना
मैं भी स्वयं दयालु हूँ।

प्रकाश राम की लय-ताल से पूरित और भक्ति-रस में सने लीला-गीतों को कृष्ण-भक्त कवि परमानन्द ने संवर्धित किया। प्रसिद्ध तीर्थस्थान मटन (कश्मीर) में 1791 ई. में जन्मे इस संत कवि ने उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्व ही इस विधा में प्रसिद्धि पा ली। शशिशेखर तोषखानी के अनुसार परमानन्द ने अपनी पीढ़ी के कवियों पर ही नहीं अपितु आनेवाले कवियों पर भी अपना प्रभाव डाला। इन्होंने पुराने रंग की शायरी में एक क्रांति उत्पन्न की और नैतिक विचारों को उपदेशात्मकता के घेरे से निकालकर यथार्थ की ओर ध्यान देकर कर्मरत होने की प्रेरणा दी। उन्होंने घिसे-पिटे रूढ़िवादी प्रतीकों के बदले अपने प्रतीकों और बिम्ब-योजना द्वारा ताज़गी और नयापन लाकर मौलिक सृजन प्रतिभा का परिचय दिया। कृष्ण-रास सम्बन्धी इनके लीला-गीत कश्मीरी काव्य की सुन्दर उपलब्धि हैं। एक उदाहरण :

गंग ज़लै छलिवे तनै
क्वंग मॅलिवे ब्यथि चन्दनै
लोलह करोस लोलि मंज़ोलई
खेलि बना रास मंडोलुइ।

—**परमानन्द**, दूसरा भाग, पृ. 123

गंग-जल से धो लो तन री
मल लो केसर और चन्दन री
प्रेमांचल का डाल हिंडोला
खेल-खेल में रास रचाओ।

1. अनुवाद—शशिशेखर तोषखानी

इनका ही एक और गीत देखिये जिसमें कवि साधुओं को भौंरा बनाकर फूलों के ढेर तले इसलिए बिठाता है ताकि वे कृष्ण के चरण-कमलों को छू सकें :

साद सथज़न बोॅम्बुर बनिथ
पोशि अम्बरन तल रुदि समिथ
चर्न कमलन हुंद छुख लोलई
खेलि बना रास मंडोलुई ।

—**परमानन्द**, भाग-2, पृ. 126

संत और सज्जन भ्रमर बन कर
पुष्प सज्जा में बैठे हैं
चरण - कमल की लालसा में
खेल - खेल में रास रचाओ।

इनकी ही एक लम्बी क विता में जिसका शीर्षक—'ज़मींदारी की लीला' है, जो उस युग के किसानों पर होनेवाले अत्याचारों का सजीव चित्रण है। आत्मिक क्षेत्र की विविध क्रियाओं के चमत्कारी अर्थों के साथ इसमें कृषि कर्म के अन्तर्गत आनेवाले विविध कार्यों की व्याख्या की गयी है ।

श्री मोतीलाल साक़ी के अनुसार कोई तीन सौ वर्ष से भागवत पुराण कश्मीर के कृष्ण-भक्त कवियों के लिए प्रेरणा का स्रोत रहा है । विशेषकर इस पुराण का दसवाँ तथा बारहवाँ स्कन्ध इन कवियों को अपनी ओर आकर्षित करता रहा है । कश्मीरी पंडितों के विवाह-गीतों पर भागवत पुराण का प्रभाव इस बात की ओर संकेत करता है कि कश्मीरी भाषा के रचनाकाल से पूर्व ही यहाँ की सभ्यता तथा संस्कृति पर इस पुराण का प्रभाव पड़ा था। कश्मीरी विवाह-गीतों में रुक्मिणी को ही कृष्ण की भार्या के रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

यद्यपि पुरातन काल से भारत में भक्ति का चलन रहा किन्तु इसको नया रूप देने और इसे दार्शनिक धरातल पर खड़ा करने में रामानुजाचार्य ने प्रशंसनीय कार्य किया है । इन्होंने ही इसे एक आन्दोलन के रूप में प्रचलित करने का श्रेय प्राप्त किया। इनके पश्चात् इस आन्दोलन को माधवाचार्य तथा वल्लभाचार्य (15वीं शती ई.) ने पुष्ट किया ।

कुछ समय के अन्तराल के पश्चात् यह भक्ति आन्दोलन दक्षिण भारत पहुँचा और दो भागों में बट गया। एक का वैष्णव और दूसरे का शैव-सम्प्रदाय नाम पड़ा। उत्तरी भारत के भक्ति आन्दोलन की मूल प्रेरणा विष्णु ही रहे ।

आगे चलकर वैष्णव सम्प्रदाय भी दो शाखाओं में बट गया। एक शाखा ने राम-भक्ति को और दूसरी ने कृष्ण-भक्ति को प्रधानता दी। विष्णु के ये दोनों रूप दशावतारों की गिनती में आते हैं। आगे चलकर कृष्ण-भक्ति शाखा भी

दो धाराओं में बँट गयी। एक धारा के माननेवाले कृष्ण-रुक्मिणी और दूसरी के राधा-कृष्ण को अपना श्रद्धा-पात्र मानने लगे। कृष्ण-रुक्मिणी की पूजा स्तुति करने वालों में नामदेव, एकनाथ तथा तुकाराम अधिक प्रसिद्ध हैं। दूसरी धारा के निम्बार्क, विष्णुस्वामी और चैतन्य महाप्रभु आदि मुख्य माने गये। भक्ति-शास्त्रानुसार पहली धारा को 'कान्ता भाव' और दूसरी को 'मधुर-भाव' की संज्ञा दी गयी।

परमानन्द अधिकतर मधुर-भाव से ही प्रेरित हैं। कृष्ण राज़दान का परमानन्द से गहरा सम्बन्ध था, वे उन्हें अपना प्यार देते और अपने पास बिठाकर सम्मानित करते। परमानन्द से प्रेरित होकर राज़दान ने भी कृष्ण-भक्ति के गीत लिखे ऐसा समीचीन लगता है। किन्तु राज़दान 'कृष्ण' को भी शंकर के रूप में ही देखते हैं और उनकी मान्यता के अनुसार कृष्ण शब्द शंकर के उलट-फेर से ही बना है।

जहाँ तक कृष्ण राज़दान का सम्बन्ध है उन्होंने मधुर-भाव और कांता-भाव दोनों में ही आस्था दिखाकर कृष्ण-भक्ति के गीतों की रचना की है। उनके काव्य-संकलन से दोनों धाराओं के सम्बन्ध में उदाहरण दिये जा सकते हैं।

कृष्ण राज़दान के लीला-गीतों तथा अन्य कविताओं का सही मूल्यांकन इसलिए नहीं हो पाया। क्योंकि उनका पूर्ण काव्य 1984 ई. तक प्रकाश में नहीं आया था। एकमात्र छपा 'हरिहर कल्याण' भी थोड़े से समय में अप्राप्य हो गया। 'हरिहर कल्याण' उचित लिपि के उपलब्ध न होने तथा काफ़ी अशुद्धियों के कारण ठीक प्रकार से पाठकों द्वारा पढ़ा न जा सका। ग्रियर्सन द्वारा संपादित और रायल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल द्वारा प्रकाशित 'शिव-परिणय' सर्वसाधारण पाठक तक न पहुँच सका। यह पुस्तक देवनागरी लिपि में थी और इसका अनुवाद संस्कृत भाषा में किया गया था। इसीलिए यह पुस्तक इने-गिने पुस्तकालयों तथा विद्वानों तक ही पहुँच पायी और यह भी शीघ्र ही अप्राप्य हो गयी।

एक और ग़लती जो कुछ लोगों ने राज़दान को समझने में की वह थी उनको कृष्ण-भक्त कवि समझना। सत्य यह है कि वे मूल रूप से शिव-भक्त कवि हैं और इस क्षेत्र में आज तक कोई उनकी बराबरी न कर सका। यही बात उनकी कला की उच्चता का प्रदर्शन करती है कि उन्होंने जो कृष्ण-भक्ति सम्बन्धी लीला-गीत लिखे हैं वे भी अपना उदाहरण आप हैं।

शशिशेखर तोषखानी ऐसे प्रथम आलोचक हैं जिन्होंने कृष्ण राज़दान को अच्छी तरह समझा और उसके काव्य का ठीक-ठीक मूल्यांकन किया है। हाल ही में प्रकाशित 'कश्मीरी साहित्य का इतिहास' में वे लिखते हैं :

> "लीला-काव्य ही नहीं उन्नीसवीं शती के समग्र कश्मीरी काव्य में संगीत चेतना का वैसा विकसित रूप कहीं देखने को नहीं मिलता जैसा कृष्ण राज़दान के गीतों में है। जयदेव की-सी ललित, मसृण और श्रुतिमधुर शब्द

योजना और उच्चतर सौन्दर्य बोध कृष्ण राज़दान को कश्मीरी गीत-काव्य के एक अद्वितीय शिल्पी के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। उन्होंने अपने काव्य में रसात्मक संवेदना के नये आयाम जोड़ दिये हैं। जीवन और जगत को कृष्ण राज़दान ने गैरिक दृष्टिभंगी से देखा और प्रस्तुत किया है। भक्ति भावना में उनकी रचनात्मकता के गहरे स्रोत स्थित हैं। विराग एक मूल संवेदक तत्त्व के रूप में उनकी अभिव्यक्ति में विद्यमान है।"

राग और विराग का धूप-छाँही सौन्दर्य उनके काव्य में विशेष रूप से निखरता है। शब्दों और वर्णों के आन्तरिक नाद सौन्दर्य को ध्वनित करने में उनकी अपूर्व क्षमता उनकी प्रतिभा का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पक्ष प्रस्तुत करती है। अपनी शैली, अपना लहजा और उनकी अलग पहचान है, जो उन्हें कश्मीरी भक्त कवियों में सबसे बड़े गीतकार के रूप में स्थापित करती है।

कृष्ण से सम्बन्धित गीत जो राज़दान ने रचे हैं वे यद्यपि शिव-भक्ति-गीतों की तुलना मे थोड़े हैं किन्तु उनमें भी उनकी कला और भावुकता का रोचक सम्मिश्रण मिलता है। कुछ गीतों में तो उनकी लेखनी ने कमाल कर दिखाया है। कृष्ण-भक्ति से सम्बन्धित कुछ रास-गीतों से यह उदाहरण देखने योग्य है :

समिथ करौ अथ वास
पकिव रास गिदॉने
श्य रचथ सांपनि कुनी रात
गूपीनाथ नच़नि लोॅग
वह्र दोह गौ पह्र मास
पकिव रास गिन्दॉने।

—**कुलियात**, पृ. 280

कर में कर दो भर उल्लास
चलो चलें हम, खेलें रास
एक रात हुई छः मास
लगे नाचने गोपीनाथ
वर्ष दिवस सम, पहर मास
चलो चलें हम, खेलें रास।

इस गीत में रास खेलने की ललक में समय की गति कहीं रुक-रुककर चलती दिखाई पड़ती है और कहीं इसमें तेज़ी आ जाती है। ऐसे क्षण जीवन में कहाँ आते हैं। गनीमत है यदि किसी के भाग्य में ऐसा दिन आये :

यथ बालह पानस दिमहौ छ़्वहा
युथइ दोॅहा छु ग़नीमत
सासस योॅगस करो सास
पकिव रास गिन्दॉने।

—**कुलियात,** पृ. 280

इस यौवन का सुख तो लूटें
ऐसा दिवस ग़नीमत है
युग युग को हम क्षण में भोगें
चलो चलें हम, खेलें रास।

इस गीत की कुछ पंक्तियाँ बरबस सूरदास की याद दिलाती हैं। हिन्दी काव्य-गगन के इस सूर्य ने जिस प्रकार कृष्ण की बाल लीलाओं को चित्रित किया है, ठीक उसी प्रकार कृष्ण राज़दान ने मातृ वात्सल्य के गैरिक चित्र खींचे हैं। एक उदाहरण लीजिये :

जसदा माता गुरुस छ मंदन
नन्द गूप नन्दन गिन्दन छुस
द्वदस त थनि छुस करन ग्रास
पकिव रास गिन्दॉने।

—**कुलियात,** पृ. 282

मात यशोदा तक्र बिलोये
नन्द का नन्दन खेले है
करे दूध मक्खन को ग्रास
चलो चलें हम, खेले रास।

यह बात विचारणीय है कि जब कवि शिव-भक्ति-लीला की रचना करते हैं तो त्याग, तपस्या और वैराग्य की बात करते हैं किन्तु जब उनका विषय कृष्ण-भक्ति होता है तो वे कृष्ण के राग को ही तप, वैराग्य तथा योगाभ्यास समझते हैं :

किस लिए त्याग करें हम
कृष्ण का चिर वांछित राग
वही तप, जप योगाभ्यास
चलो चलें हम, खेलें रास।

रास के इस उत्सव में रात्रि दिन में परिवर्तित होती है और प्रभात सायं से मिलने के लिए लालायित होता है। काल विभाजन के पैमाने काम नहीं करते।

समय स्वच्छन्द और विमुक्त हो जाता है और जब रास की गति तेज होती है तो कौन है इस धरती पर जो यह विचित्र खेल और नृत्य देखने नहीं दौड़ता। विषधर विष छोड़कर बेसुध हो रास का आनन्द लेने के लिए उपस्थित हो जाते हैं। गृहस्थ तो रास में सम्मिलित होते ही हैं किन्तु पर्वतों पर तपस्या करनेवाले मुनि भी रास-गीतों की लयताल से प्रभावित होकर, अपनी समाधि भंग करके रास-मंडप की ओर दौड़ना आरम्भ करते हैं। जब कवि और अतिशयोक्ति से काम लेने लगते हैं तो स्वयं बेजान पर्वतों में गति आ जाती है और वे साधना में लीन मुनियों और ऋषियों को अपने शिरों पर उठाकर रास देखने के लिये निकल पड़ते हैं। ऐसे पर्वतों में नगराज हिमालय, सुमेरु तथा कैलाश भी सम्मिलित हो जाते हैं। तब इस अखाड़े में तपस्वी भी ताल पर नाचने लगते हैं :

तपीश्वर आयि सूति ह्यथ बाल
मंज़ अकहारस मारान ताल
हीमाल, सुमीर ह्यथ कॉलास
पकिव रास गिन्दॉने।

—**कुलियात**, पृ. 281

लेकर पर्वत आये, तपस्वी
देने लगे मंडप में ताल
हिमगिरि, सुमेरु औ कैलास
चलो चलें हम, खेलें रास।

ऐसे ही एक और रास-गीत में बस्ती-की-बस्ती वन में परिवर्तित होती है। शब्दों को आँखें मिल जाती हैं और आँखें कानों में परिवर्तित होती हैं। यह अवस्था तब आती है जब कृष्ण गोपियों का मन चुराकर ले जाते हैं :

'रातस' द्यन गौ, बस्ती वन गौ
मन गौ ह्यथ मनमूहन नाथ
शब्दस ॲछ गयि, ॲछनइ कन गौ
आनन्दगन गौ च्यथ बोॅद ह्यथ।

—**कुलियात**, पृ. 286

रात हुई दिन, बस्ती बन
मन ले चला है मनमोहन
शब्द नयन हैं, आँखें कान
चित् को चुरा गए भगवान।

इस गीत में गोवर्धन पर्वत उड़ने लगता है और दग्ध हृदय शेषनाग के समान कोमल और शीतल हो जाता है। इसी प्रकार प्रभात की मनोरम वेला में बाल-गोपाल को जगाने का मार्मिक वर्णन भी देखने योग्य है :

बाल गोपाल जागो हुआ है प्रभात
रत-जगा कर बिताया है दिन और रात
मुक्ति-दाता हो आये तुम्हीं मेरे तात
बाल गोपाल जागो हुआ है प्रभात।

जब प्रीत गहरी होती है तो आँसू उतरना कोई अचम्भे की बात नहीं। इसी प्रीत में कवि के आँसू तारामण्डल तक जा पहुँचते हैं और चन्द्र स्वयं अमृत का प्याला लेकर उपस्थित हो जाता है :

तेरी प्रीत में मेरे आँसू
तारामण्डल जा पहुँचे
लिए चाँद अमृत का प्याला
हुआ प्रभात है गोपाला।

कृष्ण राज़दान को प्रभात की सुरम्य वेला से सीमा रहित प्रेम है। प्रभात ! जो प्रकाश लेकर आता है, प्रभात जो अन्धकार का नाशक है, प्रभात जो स्फूर्ति-दायक है; मनुष्य को तमस् से ज्योति की ओर ले जाता है। इसी प्रभात वेला में भक्तजन उठकर अपने आराध्य देव के लिए फूल तोड़ लाकर उनकी मालाएँ बनाते हैं :

फूल तोड़े हैं उठकर सवेरे
ला के डलियों में घर ले आये
गूँथ लीं फूल मालाएँ कितनी
श्याम लाला प्रभात हो चला है।

आगे चलकर इसी प्रभात में गोपियाँ यमुना पर प्रस्थान करती हैं। वह कृष्ण के ध्यान में मस्त हो गयी हैं। घर से तो वह ठीक-ठाक चली थीं किन्तु न जाने वापसी पर उन्हें क्या हो गया है, उनकी दशा तो देखो ! सूर्य रथ की सवारी पर चढ़कर आया है। उसने संसार के सभी जीव-जन्तुओं को जगा लिया है। अतः ओ श्याम लाला, जाग ! तीनों लोकों के पालक, सूर्य तेरे लिए रथ की सवारी लाया है। चल, अब भ्रमण करने चल।

इस गीत में जन-साधारण की समस्याओं को दूर कराने के लिये कवि ने शुभ कामनाएँ की हैं। इससे उस युग में लोगों की दशा का चित्र हमारी आँखों के सामने सहज ही आ जाता है। कवि कहते हैं :

क्या करें हम बड़े कुनबे वाले
हम हैं निर्धन, नहीं पैसे वाले
दिन गुज़रते बड़ी मुश्किलों में
श्याम लाला प्रभात हो चला है।

शिव-भक्ति सम्बन्धी गीतों में से कुछ उदाहरण देकर इस प्रकरण को समाप्त करते हैं। कवि के मन में बात आती है कि चीड़ का वृक्ष वर्ष भर क्यों हरा रहता है। वह कहता है कि बहुत पहले इस वृक्ष पर भागते हुए देवताओं ने अमृत गिराया था और इसी से यह पेड़ सदा-सर्वदा के लिए हरा हो गया। यह रही पेड़ पर देवताओं के अमृत गिराने की बात और यदि कोई व्यक्ति देवताओं के नेता शिव के नाम का उच्चारण करे तो क्या वह मृत्यु के भय से छुटकारा नहीं पायेगा। इसी बात को इस सुन्दर पद्य में कलात्मक ढंग से इस प्रकार कहा गया है :

पथ कालि अमृथ छुई प्यमुत यारे
वे ख़बरी मंज़ सबज़ साँपनि
अदह युस शेव नाम ज़्यवि प्यठ खारे
तस कति मारे यम तै काल।

—**कुलियात**, पृ. 350

कभी गिरा है चीड़ पे अमृत
बेसुध थी हो गयी हरी
शिव का नाम उचारे जो जन
उसे न मारे काल कभी।

इसी गीत में जगत की निस्सारता और क्षणभंगुरता पर प्रकाश डालते हुए घ्राट का प्रतीक प्रयोग में लाकर बात स्पष्ट की गयी है :

समसारस युन ग्रटह अनवारे
प्रालब्द फल छुस खारे मंज़
फल सोरि छ्ल बिहि कुस कस प्रारे
तस कति मारे यम तै काल।

—**कुलियात**, पृ. 350

जग में आना घ्राट की बारी
भाग्य के दाने खारी[1] में
चुके अन्न और चक्र थमे जब
कौन प्रतीक्षा करे किसी की।

1. एक प्रकार की लम्बी टोकरी जिसमें से चक्की में दाने गिरते हैं।

शिव का एक ताण्डव रूप भी है और कल्याणकारी रूप भी। जब इन दोनों रूपों को कवि एक साथ देखता है तो वह एक ऐसे चन्द्र के समान देखता ही रह जाता है जो आकाश में डूबने के लिए अटक गया है। कवि स्वयं ही इसे रूपद्वय के प्रभाव और इससे होनेवाले अटकाव को अद्‌भुत ढंग से चित्रित करते हैं :

शत शत सूर सम तुम तेजवान,
गज-चर्म किए हुए धारण
शुक्ल-चन्द्रमा तेरे माथे
अटक गया मैं चन्द्र समान।
हे शिव शंकर ! हे ईशान !

कवि अपने इष्टदेव के दर्शनों से उसी प्रकार खिलना चाहता है जैसे एक कमल प्रातः की ओस से। उस महाशक्ति के दर्शन का अमृत किसी बेजान को जीवित कर सकता है। उसके सामने अहंकार को त्याग कर नतमस्तक होने की आवश्यकता है :

तेरे दर्शन की शबनम से
विकसित होऊँ कमल समान
दर्श का तेरे अमृत-वर्षन
जीवित करे, करे सुजान
अहंकार के पेड़ फल रहित,
आरे से कर लूँ निष्प्राण
हे शिव शंकर ! हे ईशान !

भक्त की कल्पना और भक्ति का जब सही संगम होता है तो गीत में दर्शन-सा उभरने लगता है। कवि ऐसी अवस्था में कहता है, नहीं गाता है कि हे देव ! तेरे नेत्र उन्मीलन से दिन का उद्‌भव होता है और चक्षु निमेष से रात्रि का जन्म। ऐसे ही भोलेनाथ से कवि का भक्त-हृदय दया, बस दया द्वारा प्रणय-तृषा बुझाने की प्रार्थना करता है :

नयन निमिष तेरा ही दिन है
चक्षु निमेष विभावरी
भोलेनाथ ! दया करो तुम
प्रणय-तृषा बुझाओ मेरी।

भक्त ईश को पाने के लिए बेचैन है। वह उसके भक्तों के पैर पकड़ने को तैयार है। वह अपनी प्रबल प्रणय कामना से उत्पीड़ित अपने इष्टदेव के वसन पकड़कर और दामन खींचकर अपनत्व जताता है और अपने घर के समीप एक

छोटी नदिया के घाट पर प्रतीक्षारत हो जाता है, अपने प्रियतम को सप्रेम सादर निमन्त्रण देकर :

निराकार हे त्रिभुवन पालक
करूँ प्रतीक्षा पनघट पर
हे भस्माधर ! स्नेह में तेरे
नमन करूँ तेरे भक्तों का
विकट कामना वश मैं तेरे,
वसन थाम लूँ, आँचल खींचूँ
हे शिव शंकर तुझे निमंत्रण।

यह सारे गीत एक पाठक को ऐसे विचित्र संसार की ओर ले जाते हैं जहाँ कोई वैमनस्य नहीं, तनाव नहीं, जहाँ केवल आनन्द है शान्ति है और इसकी प्राप्ति के लिए पूर्ण समर्पण है। आर्तनाद, सामीप्य, स्पष्टता, प्राकृतिक वैचित्र्य और संगीत लहरियाँ—यदि इन सबको सजीवता और इन्द्रधनुषी रंगों में उपस्थित करने की किसी में क्षमता है तो वह है कृष्ण राज़दान। इसीलिए उसके रंग-बिरंगे, सजीले और गहरी चोट करनेवाले गीत अपना दम-खम लिए पराकाष्ठा की ओर उड़ान भरते दिखायी पड़ते हैं। इन गीतों का रस कभी चुकनेवाला नहीं। कवि स्वयं शिवमय होने के लिए प्रार्थना करता है कि हे देव ! अमृत से सराबोर प्याला मुझे पिलाओ ! हे त्रिभुवन पालक, मैं प्रतीक्षारत हूँ। तेरे चरणों में मेरा अन्तरतम और मेरी काया मज्जा सहित समर्पित है :

अमृत के भर भर कर प्याले
मुझे पिलाओ हे विश्वेश्वर
त्रिभुवन पालक ! हे गंगाधर !
करूँ प्रतीक्षा पनघट पर।

पद्म-पदों से धीरे आओ
तेरे चरणों में हे देव !
अन्तरतम और मेरी काया,
मज्जा सहित समर्पित है।

भाव-सर्जना

हाल ही में, कल्चरल अकादेमी जम्मू कश्मीर द्वारा कृष्ण राज़दान का काव्य-संकलन प्रकाशित हुआ है, जिसमें तीन सौ लीला-गीत, स्तुति और कविताएँ संकलित हैं। यद्यपि इन गीतों और कविताओं के शीर्षक प्रायः असंगत लगते हैं फिर भी कवि का लगभग सारा कार्य इस संकलन में सम्मिलित है। इस संकलन की भूमिका लम्बी होने पर भी कवि का ठीक-ठीक मूल्यांकन करने में पूरी तरह से समर्थ नहीं। गीतों और स्तुतियों की बात हम कर चुके हैं। अब इस प्रकरण में कविताओं को लिया जाये।

उनकी कविताओं को पढ़ने से स्पष्ट होता है कि यह कविताएँ प्रायः प्रौढ़ अवस्था में ही लिखी गयी हैं। इनमें गहराई भी है और रवानी भी। इनमें जीवन सम्बन्धी अनेक समस्याओं और शाश्वत प्रश्नों का विवेचन भी है और एक प्रकार का ठहराव भी।

बचपन बीत चला। जवानी न जाने कहाँ पीछे रह गयी। अब बुढ़ापे का आगमन सामने है। संसार एक लम्बे सागर के समान है जिसका कोई पारावार नहीं। कवि इसी गहरे समुद्र से पार उतारे जाने के लिए करतार से प्रार्थी है :

कथह करि करि गौ म्य लोकहचार
आर यियिनै शम्भू
ज्यूठ सदरा छु क्रूठ सम्सार
छुस न बोॅठ तै छुस न तार
अमि मंज़ै ख्वनि क्यथ म्य खार
आर यियिनै शम्भू।

—**कुलियात,** पृ. 370

बातों ही में बचपन बीता
दया करो करतार
दारुण जग अनन्त सागर है
कहीं न इसका पारावार
गोदी में ले पार उतारो
दया करो करतार।

जीवन की अनेक समस्याओं की आग सामने धू-धू कर जल रही है। पीछे विषयों की बारूद का ढेर पड़ा है और ऐसे में ही जीवन व्यतीत करना है। ऐसी हालत में यदि कोई सहायक हो सकता है तो वह केवल करतार है :

ब्रोंठह कनि छुम दज़ वुन नार
पतह कनि शोरह अम्बार
यिथि सई मंज़ छु म्योन व्यवहार
आर यियिनै शम्भू।

—**कुलियात**, पृ. 370

आग धधकती मेरे आगे
पीछे है बारूदागार
ऐसे में जीवन व्यापन है
दया करो करतार।

आयु का एक संक्षिप्त भाग अब शेष है। पर जीवन की मंजिल अभी दूर है। पीछे मुड़ना अब असम्भव है। मार्ग में विषैला नाग पड़ा है। ऐसी अवस्था में उत्साह की बात भूल जाती है। हाँ, यदि शम्भु स्वयं दयावान हो जायें तो क्या कहना :

ज्यूठ मंज़िलाह कोँड़ म्य यखबार
पथ फेरनस छुम न वार
वति प्यठ छुम कालह शाहमार
आर यियिनै शम्भू।

—**कुलियात**, पृ. 370

लम्बी मंजिल काट के आया
पीछे मुड़ना है दुश्वार
भारी विषधर राह रोके है
दया करो करतार।

जीवन की लम्बी यात्रा पर थका-हारा राही, मंजिल की दूरी, बुढ़ापे की कमज़ोरी; ऐसे में भक्त करे तो क्या करे। भक्त की चतुराई काम नहीं देती, वह प्रभु के साथ एक पक्षी के समान उड़ जाना चाहता है :

मेरी चतुराई हारे है
कौन बटाये हाथ
पंछी सम ही साथ उड़ा लो
दया करो करतार।

डल झील श्रीनगर की सुषमा और कश्मीर का हृदय है। इसकी छटा निराली है। नीले पानी की हलकी लहरों पर हिलते हुए दुल्हन जैसे सजे-सँवरे शिकारे, इसकी छाती को चूमते हुए उड़ते रंगारंग पक्षी, एक जादुई जगत का दृश्य। कुछ मित्र और शिष्य इसी झील की सैर कराने राज़दान को ले जाते हैं। शिष्यों के आग्रह पर राज़दान ने इस परिवेश से जुड़ी एक लम्बी कविता तत्काल कही। कविता दो अर्थ देती है। एक अर्थ द्वारा डल झील का मुँह बोलता चित्र—इसकी हिलोरें, इसकी छाती पर बिखरे खिल-पत्रों के बीच विकसित हुए गुलाबी और पीले कँवल, इसके वृहद् उदर से उपलब्ध होनेवाली मछलियाँ और सब्ज़ियों और अन्य वस्तुओं का बोध और दूसरे अर्थ से आध्यात्मिक जगत के कई पड़ावों का ज्ञान प्राप्त होता है। कविता का अनुवाद यद्यपि काफ़ी दुष्कर है फिर भी कुछ पद्यों को उदाहरणार्थ अनूदित करने का लोभ लेखनी को उकसाये बिना नहीं रहता :

सर कोॅर सम्सार नदरुई द्राव
डल मह होशि ॖच्यत की पम्पोश छाव
बंद कर लूभ सॅकल्फक वाव
पानै पकि प्रारब्दॅच नाव
कर पूर्व कर्म क्यन पंबछन क्राव
डल मह होशि ॖच्यत की पम्पोश छाव।

—**कुलियात**, पृ. 338

परख इस विश्व को निस्सार पाया
जलज चित् के उड़ा, मत होश बिसरा
थमाकर लोभ-संकल्पों की आँधी
चले प्रारब्ध नैया खुद ही तेरी
करो तुम पूर्व फल कर्मों का संचय
जलज चित् के उड़ा मत होश बिसरा।

आगे चलकर इस विचारपूर्ण कविता में, लोभ रहित जीवन व्यतीत करने, कमल-पत्रों की तरह निर्लिप्त रहने और केवल जीवन रक्षार्थ खा-पीकर विलग रहने का उपदेश दिया गया है :

समसारस मंज़ रोज़ न्यर्मल
वुछतह ख्यल वथरस लारि मा जल
पॉनिस मंज़ ऑसिथ त्राव त्राव
डल मह होशि .च्यत की पम्पोश छाव।

—**कुलियात**, पृ. 338

जगत में दिन बिता ले रह के निर्मल
कमल के पर्ण पर रुकता नहीं जल
सरोवर वास हो, पर त्याग जल का
जलज चित् के उड़ा, मत होश बिसरा।

यह जगत कवि की दृष्टि में एक तपती भूमि के समान है। ऐसी दशा में सज्जनों, विद्वानों और साधुओं की संगति लाभकारी सिद्ध हो सकती है :

जहाँ की तप्त भू से भागता चल
ग्रहण कर छाँव सज्जन-वृक्ष की तू
बुझाकर प्यास फल खाकर भी विलगा
जलज चित् के उड़ा, मत होश बिसरा।

पेट का लोभ खतरनाक मत्स (मत्सर) के समान जानो। शांति की कंदरा में लालच के मगरमच्छों को दलित करो। गरजती कामना-सिंहनी को बल से पकड़ लो और मन के कमलों की मौज उड़ाओ, अपने होश को ठिकाने रखो :

मगर और मत्स्य लोभी इस उदर के
सहन कर शांति की कंदरा में जाके
गरजती कामना-सिंहनी पकड़ ला
जलज चित् के उड़ा, मत होश बिसरा।

इस विश्व में यदि कुछ पाना है तो सत्य-सेतु पर बना सीधा मार्ग अपना ले। न जाने कितने मनुष्य इस जग में जन्मे और चल बसे। हमें इस सचाई को ठीक तरह आत्मसात कर लेना चाहिए कि इस दुनिया में किसी को भी सदा के लिए नहीं रहना है। मानव को चाहिए कि व्यर्थ की बातों से ध्यान हटाकर वैराग्य का पथ ग्रहण करे और जीवन के ऊँचे आदर्शों की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हो :

ग्रहण कर सत्य-सेतु मार्ग सीधा
गए आये, न जाने, कितने योधा
पहन वैराग्य की तू पादुका जा
जलज चित् के उड़ा, मत होश बिसरा।

डल झील विश्व में जल-क्रीड़ाओं के लिए विख्यात है। पेट्रोल द्वारा चलाये जानेवाले बोट को थामकर तैराक तेज़ घुमाव में चक्कर काटकर हर्ष का अनुभव करके दर्शकों को आश्चर्यचकित कर देते हैं। कवि ने इसी अगन-बोट को प्रतीक बनाकर अपनी बात इस प्रकार व्यक्त की है :

इकट्ठा करके पाँचों तत्त्व सारे
वहन कर तन का अग्नि-बोट प्यारे
चले जब घूमने यह आत्मा तो
बिगाड़ेगी यह विषयों की हवा क्या
जलज चित् के उड़ा, मत होश बिसरा।

डल झील में चलनेवाली तेज़ आँधी डूँगों की छतें उड़ा लेती है और किश्तियों को जलमग्न करके हाहाकार मचाती है। योगाभ्यास को कर्मों का राजा मानकर इन्द्रियों को वश में रखने और लोभ की आँधी से बचने के लिए कवि कहता है :

मन के डूंगे योगाभ्यास द्वारा थाम ले
हठ-कर्म से इन्द्रियों की चटाइयाँ न काट
वासना की आँधी से बच, नहीं डूबेगा भाई
होश न खो परमानन्द के कमलों का आनन्द ले।

झील में रहनेवाले हांजियों के क्रिया-कलापों द्वारा आध्यात्मिक यात्रा के कई पड़ावों का जो सुन्दर वर्णन इस कविता में हुआ है वह कला और ऊँचे आदर्शों की कामना का एक उत्तम नमूना है।

समय की अविच्छिन्न बहती धारा किसके हाथ आयी है। कौन है जो इस भयंकर सिंह को क़ाबू कर पाया है। समय ही महाकाल है जो संसार की प्रत्येक वस्तु को निरन्तर खा रहा है। इस वास्तविकता को कृष्ण राज़दान ने अच्छी तरह समझा है। इस सत्य को उसने स्वयं परखा भी है। इसीलिए वह इस जग को एक वृहद् नाट्यशाला समझता है। समय इस रंगशाला में 'भाँड़-जश्न' (नटों का उत्सव) के समान है। इसका नायक कहीं दूर छिपा बैठा है। वह मनुष्यों को विभिन्न प्रकारों से नचवाता है। इसी प्रक्रिया को आलम्बन बनाकर कवि ने कहा है :

तेरी माया का कारखाना एक 'भांड-जश्न' है
मैं अज्ञानवश न जाने क्या-क्या रूप धारण कर आया
यह सब तेरी इच्छा का ही प्रसादन है हे देव !
और यही मेरे मोह और भ्रम की निशानी है।

जब भावुकता कवि को घेर लेती है तो वह पुनः अपने आराध्य देव से कहता है कि "मैंने जीवन रूपी चदरिया उधार ली है। कभी इसे ओढ़ता हूँ और कभी उतारकर रख देता हूँ। कभी यह लम्बी हो जाती है और कभी छोटी पड़ जाती है। इसीलिए अब यह मेरे ऊपर सजती नहीं। इसी कारणवश मैं ऊल-जलूल बकने लगा हूँ। प्रभु ! आप वही वस्तुएँ मुझे प्रदान कीजिये जिनका आप स्वयं उपयोग करते हैं।"

विश्व-अभिनय का अनन्त, असीम क्रमचक्र मुझे मोह-सिन्धु में डुबो रहा है। मैं श्रद्धा से आँसू गिरा कर आपकी कृपा के मोती ग्रहण कर रहा हूँ। अब तू दान का क़लमदान खोल और मेरी मुक्ति का परवाना लिख दे :

राजयोग के शक्तिमान राजन
खोल दे दान का क़लमदान मेरे हेतु
लिख दे मेरे लिये इनाम में मुक्ति का परवाना
कैसे-कैसे रूप धारण किये मैंने अज्ञान वश।

जीवन के गहन अनुभवों से पूर्ण एक छोटी कविता में भाव और कला पक्ष के ताने-बाने मिलाकर कवि कहते हैं :

क्रपा करतम हरीहरै
ब क्याह करै ज़ोर
आरह छु वसान ठवगनि दरै
वारह छु करान शोर
छ्वप छु करान समन्दरै
ब क्याह करै ज़ोर।

—**कुलियात**, पृ. 309

स्वयं कृपा करो हरिहर
मैं क्या आग्रह करूँ प्रभु
उच्च-सेतु से बहती नदिया
ज़ोर-शोर से बहती है
बीच समन्दर होती मौन
मैं क्या आग्रह करूँ प्रभु !

जब एक भक्त अपने देवता से कुछ पाने के योग्य हो जाता है तो उसे यह जीवन एक छिछली नदी के समान लगता है जो ऊँचाई से बहने के कारण बहुत शोर मचाती है किन्तु होती है खाली। जब यह आत्मारूपी नदिया सर्वव्यापक शिव के विशाल-सागर रूपी स्वरूप में विलीन हो जाती है तो परम सुख के अनुभव से मौन हो जाती है। यही रहस्य ऊपर दिये गये पद्य से उद्घाटित होता है।

शक्तिपात के सम्बन्ध में हम पहले बात कर आये हैं। कवि आगे कहता है कि मैं बुढ़ापे के कारण टूट रहा हूँ। मेरे कंधों पर भारी बोझ है और सामने पांचाल का ऊँचा दुर्गम पहाड़ खड़ा है, इसे कैसे पार करूँ? यहाँ मेरा आग्रह क्या काम दे सकता है:

लूसिथ प्योमुत छुस बुजरै
खोॅतमुत छुम बोॅड़ बोर
यथ पांचालस किथ पॉठि तरै
ब क्या करै ज़ोर।

—**कुलियात**, पृ. 309

वृद्धावस्था से टूटा हूँ
कंधों पर है भारी बोझ
इस 'पांचाल' को लाँघूँ कैसे
मैं क्या आग्रह करूँ प्रभु।

ऐ श्याम! तुम मेरे सामने उसी प्रकार रहो जैसे प्रभात का प्रकाश चारों ओर फैला रहता है। कहीं कमल रूपी मेरी आत्मा पर दिन अटक के रह न जाये:

सन्म्वख रोज़त शामसोंदरै
प्रभात ह्यू . च्वपोर
पम्पोशस युथ न दोह लगि दरै
ब क्या करै ज़ोर।

—**कुलियात**, पृ. 309

सम्मुख मेरे श्याम रहो तुम
जैसे हो चहुँ ओर प्रभात
कहीं कमल पर दिन नहिं अटके
मैं क्या आग्रह करूँ प्रभु।

योग-मार्ग के चार मुख्य पड़ाव बताये गये हैं। यह हैं स्वप्न, जाग्रति, सुषुप्ति तथा तुरीय। तुरीय अवस्था चौथी और आखिरी मंज़िल है और यह मोक्ष की अवस्था है। योग-भवन की इसी अन्तिम मंज़िल तक पहुँचने के लिए भक्त निवेदन करता है:

अन्दर चॉनिथ ज्ञानकि गरै
हावुम चूरिम पोर
तथ मंज रूज़िथ आनन्द बरै
ब क्याह करै ज़ोर।

—**कुलियात,** पृ. 310

ज्ञान के घर में भीतर लेकर
मंजिल चौथी मुझे दिखाओ
उस में रह कर आनन्द भरूँ
मैं क्या आग्रह प्रभु करूँ।

भावुक-हृदय सत्र की सीमाएँ लाँघ रहा है। वह परमानन्द की प्राप्ति के लिये छटपटा रहा है। वह प्रभु से कहता है कि 'कृष्ण' (स्वयं कवि) का आदर करने के लिए योग-भवन के मुख्य द्वार के पट खोल दीजिये। मैं इसी भवन में अमर होकर रहना चाहता हूँ। इस सबके लिये आप ही की अनुकम्पा चाहिए। मैं इसमें कोई आग्रह नहीं कर सकता।

'कृष्णस' मुच़राव बावकि बरै
कुनी वरै तोर
यथ लरि ़च्य ह्यथ बसह अमरै
ब क्या करै ज़ोर।

—**कुलियात,** पृ. 310

एक ही क्षण में भाव द्वार के
पट-अवरोध हटा दो ना
अमर रहूँ इस घर में तुम संग
मैं क्या आग्रह करूँ प्रभु।

ऐसे ही गहन अनुभवों और भक्ति-पुष्पों से ओत-प्रोत यह कविता कृष्ण राज़दान की उत्तम रचनाओं में गिनी जाती है।

वाक्

राज़दान ने लल्लेश्वरी के वाकों की तर्ज़ पर कुछ सुन्दर वाकों की रचना की है। दुःख की बात यह है कि इनमें से कुछ वाक् अन्य कवियों के खाते में डाल दिये गये हैं। ये वाक् अनुवाद सहित दिये जा रहे हैं :

दमी ड्यूठुय नब न्यथनों नुइ
दमी पूरिथ ओंबरुक थान
दमी डीठॅम अनिगटह् रातस
दमी चद्रम गाह त्रावन्।

—**कुलियात**, पृ. 407

नग्न निर्वसन अभी नभ देखा
पहने मेघ के थान अभी
अभी अँधेरी रात का खटका
अभी चमकती चन्द्र-प्रभा।

जीवन की विभिन्न अवस्थाओं के सम्बन्ध में समय-चक्र कौन-से गुल खिलाता है, इसका वर्णन देखिए :

दमी ड्यूठुम 'लों कटुइ 'न्यचुवाह
न्यश्बोंद बालुखा मूड़ 'अज़ान
दयी ड्यूठुम पंडितन मंज़ 'बाग
मन निववुन दिववुन 'व्याख्यान

—**कुलियात**, पृ. 407

शिशु अभी नन्हा-सा देखा
निश्छल बालक भोला-भाला
क्षण में विद्वानों ने देखा,
देता मनमोहक व्याख्यान।

जीवन के अनेक रंग और रूप हैं। जहाँ धूप होती है वहाँ छाँव अवश्य आती है। रूप-सौन्दर्य सदा के लिए नहीं रहता। एक युवा स्त्री की आभूषणों से लदी-फँदी रम्य काया अन्त में मिट्टी में मिल जाती है। इसी तथ्य का स्पष्टीकरण नीचे दिये गये वाक् में हुआ है :

दमी डीठॅम काया शूबान
गंडिथ गहना अमि यमि सान
दमी डीठॅम पथर पेमॅच्
बे ह्यस गॉमॅच् त्रॉविथ प्रान।

—**कुलियात**, पृ. 407

देखा अभी, काया थी शोभित
आभूषण, उबटन, उत्थान
अभी धरा पर पड़ी हुई थी,
बेसुध, निकल चुके थे प्राण।

इसी प्रकार, तीन वाकों में, एक कुलीन, सुन्दर और कई पुत्रोंवाली एक नारी के भिखारी बनने की दुखद गाथा बयान की गयी है :

गहनों से लदी-फँदी इक सुंदरी
सूख गयी जब उसकी काया
पूछा, क्या हुए आभूषण ?
नाम तुम्हारा क्या है बोलो ?

'भाग्यवान', कहते थे, बोली
बनी भिखारिन, दरिद्र हूँ अब
वस्तु-वस्तु के लिये भटकती
अब मैं घर-घर फिरती हूँ

कितनों को पाला-पोसा है
किये हैं कितने कन्यादान
कई पुत्र अर्जन करते थे
अर्जित कर लाते धन-धान।

मैंने कहा, भव-बन्धन काटो
पाना हो छोड़ो अभिमान।

वाकों की इस त्रिवेणी के पश्चात् एक उदाहरण इसी संदर्भ में एक और गीत से :

मेरी काया की फुलवाड़ी
ध्वस्त करेगी शरद - पवन
कितनी देर टिकेगा यौवन
लीप - पोत औरों के घर
मिटी न ममता इस जग की
कब तक रहूँ पराई घर में।

कवि को सभी सांसारिक वस्तुएँ—घर-बार, शरीर, बन्धु-बांधव सब पराये लगते हैं। उसका असली घर उसी महाशक्ति में है जिसे वह स्थान-स्थान पर ढूँढ़ रहा है। कवि के एक और शिवभक्ति गीत के एक पद्य से इस अध्याय को समाप्त किया जाये :

यस छु हरम्वख प्यठह् वसवुन पोञ
शिव शक्ति रूप नाद ब्यंद स्यंदि वोञ
सुई गों सोञ सर्वशक्तिमान वरि मे
सुई गों सोञ पननी दया करिमे

—**कुलियात**, पृ. 319

नीर बहे हरमुख से जिस पर
शक्ति - पात का सिन्धु - सलिल
देव वही मुझको वर लेगा
दयावान है, दया करेगा।

प्रकृति का कवि-गायक

लीला-काव्य के चमकते सूर्य कृष्ण राज़दान को यदि प्रकृति का कवि कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। कश्मीर प्रकृति का सुरम्य आँगन है। पर्वतों के बीच जगमगाता एक सुन्दर नग, जहाँ प्रत्येक वस्तु सविता की प्रथम किरण की तरह थिरकती है। यही रंगीली भूमि कृष्ण राज़दान के गीतों में रंग छिटकती नज़र आती है। नागरिक हलचल से दूर यहाँ के वन, पारा (सीमाब) उगलते चश्मे, हँसते झरने और गाते जल-प्रपात 'राज़दान' के काव्य के आभूषण हैं।

इस कवि को कश्मीर ही नहीं, अपितु सारे भारत के रंगों, त्योहारों और धरती की लीलाओं से गहरा प्रेम है। उसे ऋतुओं के क्रिया-कलाप का पूर्ण ज्ञान है। इन्हीं में उसे शिव के स्पन्द का अनुभव होता है। प्रकृति के जिन आलंबनों द्वारा कवि ने अपने काव्य में रंग भरे हैं उनमें सर्वप्रथम है—विहान। राज़दान के सामने प्रत्येक प्रभात शिव के लिए स्वागत के गीत गाता हुआ आता है। उसकी दृष्टि में जब कश्मीर के प्राचीन मार्तण्ड मन्दिर पर सूर्य की किरणें जाल बिखेर कर नाचना आरम्भ करती है तो अतीत जी उठता है। दूधिया पर्वत-शृंगों पर उषा अपनी सिंदूरी आभा इसलिए छिटकती है कि शिव प्रसन्न हो जाएँ। पक्षियों का अपने नीड़ों में प्रभाती-गान, शीतल जल पूरित नदियों से अठखेलियाँ करती हुई प्रातःकालीन समीर, धीरे-धीरे उपवनों में खिले पुष्पों पर बिखरे ओस-कणों के मोती—यह सब क्या है। उसी शिव का दर्शन और कुछ नहीं। कवि इसी को अपने शब्दों में जीवन प्रदान करता है :

प्रकाश-पूरित योगी हँसा, हुआ प्रभात
ओस-सने सुमन कर कृष्ण पर अर्पण
कर आरम्भ मूल प्राण-वायु का चिंतन

इसी संदर्भ में एक और उदाहरण :

अनि गटह् चॅज फ्व्ज संगरमालो
व्वथु नन्दलालो यूग न्यन्दरे
गाशि तारकुक गाह् प्यौ बालह् बालो
प्रकाशि चानि सूति प्रज़लनह् आव
दूरि वोॅथ पूरि कनि प्यठ पांचालो
व्वथु नन्दलालो यूग न्यन्दरे। —**कुलियात,** पृ. 368

गया अन्धेरा, खिल उठी शृंग-माला
योग-निद्रा से जाग ओ नन्दलाला
कियो प्रकाशित हर पर्वत प्रातः के तारे ने
आलोकित किया दिशा-दिशा को तूने।
दूर पूर्व से 'पांचाल' पर उतरा उजाला
योग-निद्रा से जाग ओ नन्दलाल!

कश्मीरी भाषा में एक महत्त्वपूर्ण शब्द आता है 'यार-बल'। हिन्दी का पनघट शब्द इसका किसी हद तक पर्यायवाची हो सकता है। यारबल कश्मीर की संस्कृति का एक अभिन्न अंग है और कुछ विस्तृत अर्थों में प्रयुक्त होता है। इस शब्द का भावात्मक प्रयोग कवि ने अपने गीतों में कई स्थलों पर किया है। कहीं पनघट के किनारे 'शिव, शिव' शब्द से निनादित हो रहे हैं। कहीं इन्हीं पनघटों पर शंख बज रहे हैं और दीप प्रकाश फैला रहे हैं।

कश्मीर की शिल्प कला संसार-भर में विख्यात है। शाल और दुशाला दुनिया के किस भाग में कश्मीर से कहाँ-कहाँ नहीं जाता? कवि दुशाले से प्रकाश को उपमित करते हुए कहता है कि मैंने काला 'फिरन'[1] उतार दिया है और अन्धेरे को चीरता हुआ प्रकाश का दुशाला ओढ़ लिया है।

अति प्राचीन सिंधु नदी के किनारे, गंगा नदी का फैलाव और 'लार'[2] इलाके के सौन्दर्य का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है :

स्यंद बठयन गंग आरन
प्यठ ब प्रारन छुस
ध्यान दारन सथ् व्यचारन
म्वखतह् हारन छुस
लारह् वुन छुस 'लार' वते
छुख च् कते है।

—**कुलियात,** पृ. 372

---

1. प्रसिद्ध कश्मीरी पहरावा 2. एक प्रसिद्ध क्षेत्र

सिन्धु कूलों, गंग सरिता,
पर प्रतीक्षारत हूँ मैं
ध्यान में कर सत्य चिन्तन
अश्रु-मुक्ता छन रहा
'लार' दिशि से दौड़ता हूँ
हो कहाँ तुम इष्ट देव ?

वसंत-ऋतु कवि को बेहद प्यारी है। वह इसकी हरियाली से इतना प्रभावित है कि उसे दुनिया की हर वस्तु हरी दिखाई देती है :

पहने वसन वसंत के श्याम आया
हो गया सारा विश्व हरा
लो वसंत-ऋतु आ पहुँची
हरित-गरुड़ासीन 'कृष्ण' ने,
आँगन में जब किया प्रवेश
सारा घर हो गया हरा
फूटी पेड़ों पर कोंपल हरी।

मैदान, पर्वत, वृक्ष सब हरे हो गये हैं और इसी आभा से नीलाकाश भी हरा हो गया है। ऐसे हरे आकाश से पीयूष बरस रहा है। यही पीयूष हमारे लिए शुभ दर्शन है।

महाशक्ति का ही चक्र यह सारा विश्व है। जब यही शक्ति शशि को सुलाती है और सूर्य को जगाती है तो संसार में प्रातःकाल का आह्वान होता है। प्रकृति का यह मनोरम खेल वैसा ही लगता है जैसा कि एक माँ द्वारा अपने छोटे-से शिशु को जगाना या सुलाना :

जगाया सूर्य को शशि को सुलाया
दिया तारागणों को शून्य में स्थान
हुआ प्रकाश-पति का ज्योति से ज्ञान
दिखाया रूप प्रातः का प्रभु ने।

कभी-कभी कवि को कश्मीर का अतीत याद आता है और वे इससे सम्बन्धित तीर्थस्थानों को अपनी कविताओं में पिरोने लगते हैं। डॉ. रघुनाथसिंह, जिन्होंने कश्मीरी इतिहासकार जोनराज की 'राजतरंगिनी' का हिन्दी-अनुवाद किया है, के अनुसार प्राचीनकाल में कश्मीर में कोई तीन सौ प्रसिद्ध तीर्थस्थान विद्यमान थे। इन स्थानों पर स्थापित किये गये मन्दिरों में शिव, विष्णु तथा बुद्ध की अनुपम मूर्तियाँ थीं। 'शिव-परिणय' में, जिसका विस्तृत वर्णन हो चुका है, 'पुष्प-पूजा'

शीर्षक एक कविता में इन तीर्थों का जिक्र किया गया है। इन तीर्थों में अमरनाथ यात्रा में आनेवाले प्राकृतिक दृश्यों तथा कई पड़ावों का वर्णन आता है।

अन्य तीर्थस्थानों में अनन्तनाग, वर्गशेखा, मार्तण्ड, कारकोट नाग, पापहरण नाग, कपटेश्वर, त्रिसन्ध्या, वेरीनाग (नील नाग), वासुकी नाग, कौंसर नाग (एक बहुत बड़ी पहाड़ी झील जो 17 हज़ार फुट की ऊँचाई पर स्थित है। कपालमोचन, भद्रकाली, कोटितीर्थ, तुलामुला, रामरादन, हरमुख, ब्रह्म सर, (इस सर का वर्णन महाभारत में भी आया है) कोल सर, हारी पर्वत, चक्रेश्वर, पद्मपुर तथा ज्वाला-मुखी मुख्य हैं। इन तीर्थों के आसपास और इनकी प्राकृतिक विभूषा का सुन्दर वर्णन 'पुष्प-पूजा' के भक्ति-गीत में मुखरित हो उठा है।

ऐसे ही स्थानों में 'देवसर' का भी नाम वर्णित है जो हिमालय के आँचल में, जाने कितनी सभ्यताओं को अपनी कोख में छिपाये बैठा है। रम्य आरा (रंबी आरा) नदी पर स्थित 'कपाल मोचन' तीर्थ के सम्बन्ध में कहा गया है कि यहाँ शिव ने एक हत्या के पाप से छुटकारा प्राप्त किया था। इसी प्रकार तुलामुला में देवी का जो तीर्थ है, वहाँ आज तक लोग बड़ी श्रद्धा से जाते हैं। इसका श्रद्धापूर्ण वर्णन भी कवि ने किया है।

बर्फ़ और वह भी कश्मीर का हिम-वर्णन अपना एक अलग आकर्षण रखता है। जब यहाँ बर्फ़ गिरती है तो चारों ओर एक सफ़ेद चादर-सी बिछ जाती है। छतें, आँगन, गली-कूचे और बड़ी सड़कें सब पर बर्फ़ की श्वेत तह जम जाती है कृष्ण राज़दान ने शिव-विवाह के प्रकरण में श्वेत हिम के स्थान पर सोने के हिम का वर्णन कर एक नयी परिकल्पना की है।

रचनात्मक योगदान

कृष्ण राज़दान का भावना-जगत एक ऐसा विशाल सागर है जिसमें प्रेम, श्रद्धा और विनय की उर्मियाँ सदा उठती रहती हैं। यह अनुभूति का एक विचित्र पुष्पोद्यान है जिसमें नित नयी सुगन्ध उत्पन्न होती है और भक्त इसी सुगन्ध की मालाएँ पिरोने का कठिन कार्य बड़ी सहजता से करता है। भाव-संसार की अनुभूतियों को सहज अभिव्यक्ति देना साधारण कार्य नहीं इसके लिये लोहे के चने चबाने पड़ते हैं। इसके लिए भावना के दीपों में मेहनत का खून जलाना पड़ता है। यह कार्य है चिंघाड़ती सिंहनी से दूध दोहकर स्वर्ण के पात्रों में सुरक्षित करना।

कृष्ण राज़दान ने यह कार्य ठीक ढंग से पूरा किया है। एक उच्च कलाकार होने के कारण उन्हें खरे और खोटे की पूरी पहचान है। कवि का स्वामी है शिव, उसका स्पंद यह संसार है जो नश्वर है। अतः इसी नश्वर संसार के सहारे अनश्वर शिव का ज्ञान और उसकी अभिव्यक्ति के लिये उचित भाषा-माध्यम। इस सारे उपक्रम में कवि खरे उतरते हैं। वह स्वयं को मिटाकर केवल समर्पण-मात्र रह जाता है:

जो भी है, जहाँ भी है
तेरा ही है हे शम्भू !
शरीर, चित्, मन हो या प्राण
सब तेरा है, हे महान् !
हम केवल मात्र पहचान।

खोशे खोशे से खलिहान
बूँद बूँद से नदिया

दाने दाने से आगार
सब तेरा ही है व्यापार
हर हाट भरा है सौदे से
केवल भक्ति चाहिये अगाध।

—अनुवाद : **कुलियात,** पृ. 369

कला वह योजना है जो मन-मन्दिर में उद्‌गीथ भावों को व्यक्त करने के लिये भाषा का आभापूर्ण पहरावा लेकर प्रकाशित होती है और पाठक को प्रभावित करती है। अंग्रेज़ी भाषा के प्रसिद्ध कवि एज़रा पाउंड के अनुसार कविता की अभिव्यक्ति तीन प्रकार से होती है। प्रथम, संगीत माधुर्य पूरित, द्वितीय, दृश्य-जगत से प्रभावित होकर, तृतीय, अन्तर्निहित अनुभूति के आधार पर। कृष्ण राज़दान में इन तीनों पक्षों का सम्मिश्रण मिलता है। संगीत पर वे काफ़ी बल देते हैं, दृश्य-जगत से वे अपने काव्य-संसार का कलेवर बुनते हैं और अनुभूति उनके काव्य की आत्मा है। वह स्वयं इसका स्पष्टीकरण करते हैं :

सिंहनी का क्षीर, पात्र स्वर्ण का
है समर्पित ईश तू दर्शन तो दे
सन्मार्ग बता दे भक्तों को
सब व्यापार तेरा ही है।

—अनुवाद : **कुलियात,** पृ. 399

ऐसा कहकर कवि अपनी कला का समर्पण भी उसी इष्टदेव के नाम करके सर्व-मंगल कामी हो जाता है :

सर्व मंगल, परम सुख; हर्ष दो, कल्याण दो
पार होऊँ अन्धकार में चपला-सम, शक्ति दो
नरक की अग्नि मेरी हो तेरे ही अमृत से शांत।

समकालीन कवियों के विपरीत फ़ारसी छंदों का प्रयोग न करके कृष्ण राज़दान ने लोक-काव्य की सरल किन्तु शक्तिशाली विधा—'वच ुन' को ही चुना। प्रसिद्ध कश्मीरी कवयित्री लल्लेश्वरी के काव्य-विधान पर अच्छी प्रकार चिंतन करने से लगता है कि यह विधान वैदिक मंत्रों तथा संस्कृत-श्लोकों के आधार पर रचा गया है। 'वाक्' अथवा 'वाख' चार से आठ पंक्तियों का होता है। 'लल्लेश्वरी' के प्रकाशित वाकों में प्रायः चार पंक्ति वाले ही वाक् आते हैं। इस विधान में प्रथम तथा तृतीय पंक्ति समान छंद की होती है। उदाहरण के लिए यह वाक् देखिये :

आमि पनह् सॅदरस नावि छस लमान
कति बोज़ि दै म्योन म्य ति दियि तार
आम्यन टाक्यन पोञ जन शमान
ज़ुव छुम ब्रमान गरह् गछ़ हा ।

—**ललद्यद,** हिन्दी अनुवाद, पृ. 26

कच्चे धागे से नैया को खेती हूँ
दई सुने तो मुझ को तारे
मृण्पात्र में जल थमता है
जी करता है जाऊँ स्वदेश (प्रभु के घर)

ऊपर दिये गये मौलिक कश्मीरी वाक् में प्रथम तथा तृतीय पंक्ति का कश्मीरी शब्द लमान—खैंचना तथा शमान—पचना, एक ही लय-ताल पर आधारित हैं। वाक्-विधा में लल्लेश्वरी के पश्चात् रूप भवानी और रॅच् द्यद (प्यारी दीदी) ने वाकों की रचना की। यह बात भी विचारणीय है कि ये तीनों कवयित्रियाँ हैं। न जाने इस विधा में कोई कवि क्यों न टिक सका।

वाक् के पश्चात् जो प्रभावी विधा कश्मीरी साहित्य में आती है वह है—'वचुन'—स्वयं लल्लेश्वरी ने इस शब्द का अपने एक वाक् में ज़िक्र किया है। 'वच़ ुन'—विधा की विशेषताएँ बताते हुए शशिशेखर तोषखानी ने इस विधा के विकास पर संक्षिप्त प्रकाश डाला है :

" 'वच़ ुन' लोक-गीतों की टेक और अन्तरा का विधान लिये हुए है। इसमें प्राय: तीन-तीन पंक्तियों के अन्तर पर टेक मिलती है। इसका विस्तार प्राय: छ: या नौ पंक्तियों से अधिक नहीं होता। लोकतत्त्व के संयोग और प्रेरणा से विकसित हुए ये गीत कश्मीरी काव्य को आत्माभिव्यक्ति के नये धरातल पर स्थापित करते हैं। लोक-गीतों का-सा उन्मुक्त वातावरण इन वच़ ुन-गीतों को एक जीवन्त और प्राणवान विधा का रूप देता है।"

प्रोफ़ेसर पुष्प के अनुसार वचन विधा का उपयोग कन्नड भाषा के काव्य में भी हुआ है। इसी विधा को कृष्ण राज़दान ने अपनाना श्रेयस्कर समझा। इनके प्राय: सभी लीला-गीतों, स्तुतियों और कविताओं में आरम्भ में दो पंक्तियों का एक पद्य आता है। इसी पद्य की दूसरी पंक्ति अन्त तक टेक के काम में प्रयुक्त होती है। उदाहरण के लिये :

भयि रोॅस थावतम जयि सानो
दयि रोॅटमै म्य चोन दामानो।

इस पद्य की दूसरी पंक्ति अन्त तक तीन-तीन पंक्तियों के बाद दुहरायी जाती है। वचु़न विधा का एक विशेष गुण है इसकी प्रगीतात्मकता। टेक

के बार-बार आने से एक विशेष लय-ताल का मधुर स्वर कानों में मिठास भरता रहता है और भाव-हृत्तंत्रियों को झंकृत करता है। इस विधा का प्रयोग कई कवियों ने आज़ तक किसी-न-किसी रूप में किया है।

जहाँ तक कवि कृष्ण राज़दान की भाषा और शब्द-भण्डार का सम्बन्ध है, उन्होंने ठेठ कश्मीरी शब्दों के अतिरिक्त संस्कृत तत्सम तथा तद्भव शब्दों का कश्मीरीकरण किया है। उनकी भाषा किसी भी प्रकार से क्लिष्ट नहीं। इसमें गति है, रवानी है और है सादगी।

श्री अली जवाद ज़ैदी[1] का मत है कि :

"फ़ारसी तथा संस्कृत मिश्रित कश्मीरी एक ही भाषा के दो पहलू हैं, एक ही नदी के दो घाट। इनको हिन्दू व मुस्लिम नाम देना ठीक नहीं क्योंकि इससे एक असाहित्यिक विचारधारा साहित्य में प्रविष्ट होती है।"

इस सम्बन्ध में ब्रज. बी. काचरू का यह मत, कि कश्मीर में दो प्रकार की कश्मीरी का प्रयोग होता है युक्ति-संगत नहीं लगता। राज़दान का जो विषय था उसके लिये फ़ारसी विचारधारा तथा शब्दावली का प्रयोग उचित न था। उसके लिए तो भारतीय विचारधारा तथा तदनुसार संस्कृत शब्दावली का कश्मीरीकरण उनके लिये अत्यन्त आवश्यक था। 'राज़दान' की संस्कृत मिश्रित कश्मीरी भाषा पर बात करते हुए अली जवाद ज़ैदी के निम्न उद्धृत विचार उचित और युक्ति-संगत लगते हैं :

"आध्यात्मिकता और सदाचार; सामाजिक समस्याओं और राजनैतिक मुद्दों को व्यक्त करने और लम्बे अथवा संक्षिप्त विदेशी, अन्तर्प्रान्तीय या अन्तर्राष्ट्रीय वाद-विवादों और कथाओं का वर्णन करने के लिये सैकड़ों हज़ारों नये शब्द, नयी तरकीबों, नयी उपमाओं और प्रतीकों की आवश्यकता पड़ती है और यह सब उन्हीं भाषाओं से प्राप्त होता है जिनका स्तर अन्तर्प्रान्तीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय हो। यही कारण है कि दूसरी हिन्द आर्य-भाषाओं की तरह कश्मीरी ने भी संस्कृत और फ़ारसी भाषाओं का सहारा लिया। सारी धार्मिक तथा सांस्कृतिक सम्पत्ति इन्हीं भाषाओं में थी इसलिए इनसे ही शब्द तथा शैली उधार ली गयी।"

इस प्रकार कश्मीरी भाषा के शब्द-भण्डार में जो वृद्धि राज़दान ने की वह सराहनीय है और उसका उपयोग आज भी साहित्य की अन्य विधाओं के लिये किया जा सकता है।

अलंकारों, मुहावरों से युक्त भाषा में राज़दान ने शांतरस का भरपूर प्रयोग किया है। शब्दों की उचित छील-छाल से उन्होंने अपनी भाषा को सरल बनाने का विशेष प्रयत्न किया है।

1. कल्चरल अकादमी, श्रीनगर के भूतपूर्व सचिव

1926 ई. में कश्मीरी लीला-काव्य का यह उड़ता राजहंस सदा के लिए चुप हो गया। तब से आज तक कोई भी कवि इस विधा में उभर न सका। उच्च कोटि का यह शिव-भक्त कवि कश्मीर ही नहीं अपितु सारे भारतवर्ष का प्रतिनिधि कवि था। इसके गीत सदा अमर रहेंगे।

सहायक-सामग्री

आस्पेक्टस ऑफ़ कश्मीर शैविज़्म (Aspects of Kashmir Saivism) : बी. एन. पंडित

एन्श्येंट इंडिया : आर. सी. मजुमदार

ए हिस्ट्री ऑफ़ कश्मीर (1972 ई.) : पी. एन. के. बामज़ई

ए डिक्शनरी—उर्दू क्लासिकल, हिन्दी एण्ड इंगलिश : जान. टी. प्लैट्स, आक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय

अहवाल नामा : चमनलाल चमन, बशीर अख़्तर (कश्मीरी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय)

कुलियात कृष्ण जू राज़दान (1984 ई.) : सोमनाथ वीर द्वारा संकलित कल्चरल अकादमी, श्रीनगर

कश्मीरी लिरिक्स (1945 ई.) : जे. एल. कौल

कॉश्रि अद्‌बुक तवॉरीख़ : नाज़ी मुनव्वर, डॉ. शफ़ी शौक़

कॉशुर रामायन (कश्मीरी रामायण) : प्रकाशराम कुरीगामी कृत। प्रो. बलजीनाथ द्वारा संपादित, कल्चरल अकादेमी, श्रीनगर

कश्मीरी जबान और शाइरी : अब्दुल अहद आज़ाद

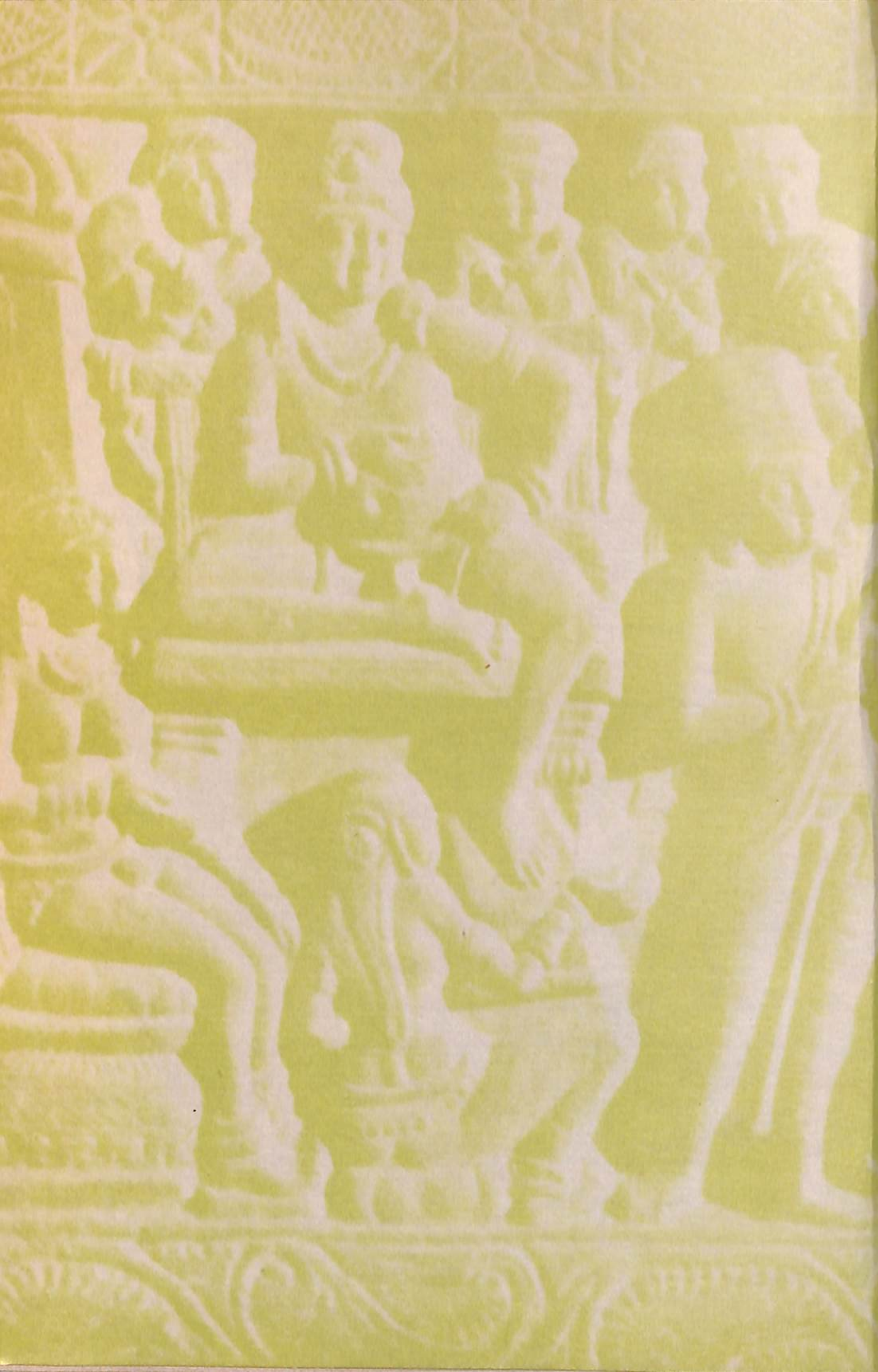
कॉशुर समाचार (मास्टर जी विशेषांक) : दिल्ली

कॉशरि अद्‌बुक फिकिरी पों॑त मन्ज़र (कश्मीरी साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि) : 'अनहार' विशेषांक, कश्मीरी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय

कृष्ण-भक्त परमानन्द	: लेख : मोतीलाल साक़ी, 'मार्तण्ड' (अंग्रेज़ी) साप्ताहिक, श्रीनगर
कॉशुर एनसाइक्लोपीडिया (कश्मीरी विश्व कोश) प्रथम भाग	: कल्चरल अकादमी, श्रीनगर
कॉशिरि लुक बॉथ-7 (कश्मीरी लोक-गीत) अंक-7	: कल्चरल अकादमी, श्रीनगर
कश्मीरी साहित्य का इतिहास	: शशिशेखर तोष़खानी, कल्चरल अकादमी, श्रीनगर
कॉशिर सूफी शॉइरी-1,2 (कश्मीरी सूफी काव्य, भाग 1, 2)	: मोतीलाल साक़ी द्वारा संपादित कल्चरल अकादमी, श्रीनगर
कॉशरि मसनवियि (कश्मीरी प्रेमाख्यान)	: शीराज़ा' कश्मीरी, अंक-13, संख्या-2, कल्चरल अकादमी, श्रीनगर
कश्मीरी रिसर्च बाय-एनुएल (Kashmiri Research Bi—Annual) सितम्बर-1960	: संपादक : प्रो. पी. एन. पुष्प
तारीखे तमद्दुने हिन्द (भारत का सांस्कृतिक इतिहास)	: मुहम्मद मुजीब, नेशनल बुक ट्रस्ट नयी दिल्ली
द वैली ऑफ़ कश्मीर (The Valley of Kashmir) 1985 ई.	: सर वाल्टर लारेंस
द एसेंट ऑफ़ सेल्फ (The Ascent of Self)	: बी. एन. परिमू, कल्चरल अकादमी, श्रीनगर
परमानन्द-1 (1972 ई.)	: जे. एल. कौल तथा मोतीलाल साक़ी कल्चरल अकादमी, श्रीनगर
परमानन्द-2 (1974 ई.)	: एम. एल. साक़ी कलचरल अकादमी श्रीनगर
कल्हण कृत राजतरंगिणी	: अर्ल स्टाइन द्वारा अंग्रेज़ी में अनूदित
ललद्यद (हिन्दी)	: (सं.) शम्भुनाथ भट्ट हलीम, कल्चरल अकादेमी, श्रीनर
शिव परिणय	: कृष्ण राज़दान, सर जार्ज. ए. ग्रियर्सन, एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ बंगाल

शिव परिणय (लेख)	: कॉशुर शीराज़ह (कश्मीरी शीराज़ा) 1973 ई.
हीमाल	: (सं.) मुहम्मद यूसुफ़ टेंग, कल्चरल अकादमी, श्रीनगर
हरिहर कल्यान	: कृष्ण राज़दान : अली मुहम्मद एण्ड संज़, महाराजगंज, श्रीनगर
कश्मीरी शैव-दर्शन में भक्ति का स्थान (लेख)	: शीराज़ा (हिन्दी) : केदारनाथ शर्मा

□□





भारतीय साहित्य में भक्ति-काव्य की विशिष्ट भूमिका रही है। भारत जैसे महान् एवं शान्तिप्रिय देश में धार्मिक समन्वय तथा विभिन्न धर्म-दर्शनों के बीच संवाद और समीकरण की जहाँ बहुत आवश्यकता रही वहाँ इनके बीच परस्पर विश्वास और सामंजस्य पर भी अत्यधिक ज़ोर दिया गया।

शताब्दियों से कश्मीर ने कई दर्शनों और धर्मों को अपनी सुरम्य वादी में संरक्षण प्रदान किया। भक्त कवियों, शैव-साधकों, तांत्रिकों तथा सूफ़ियों ने यहाँ अपनी वाणियों और रचनाओं द्वारा सर्वधर्म सद्भाव के प्रसार-प्रचार में सराहनीय कार्य किया। इसी महान् परम्परा में **कृष्ण राज़दान** (1850-1926) का नाम ससम्मान लिया जा सकता है। अनन्य शिव-भक्त होते हुए भी उन्होंने जहाँ अपने आराध्य की स्तुति में अनगिनत गीत रचे वहाँ पूर्णावतार श्रीकृष्ण की रासलीलाओं को भी गीत-बद्ध करते हुए अपने कविकर्म को सफल और सार्थक किया। उन्होंने लीला-विधा जैसे अनूठे विषय को आकर्षक शैली, मनोहारी शब्दन्यास और सुललित छन्दों में केवल निबद्ध ही नहीं किया अपितु उसमें कश्मीर की उन्मुक्त रूपच्छटा और निसर्ग में व्यक्त निष्काम भक्ति-भाव को भी छंद-मुखर किया है। उनकी रचनाओं में उन प्राचीन नदियों, वनों, पर्वतों, तीर्थ-स्थलों आदि का बार-बार उल्लेख आया है, जो भारतीय जन-मानस में सदियों से विद्यमान हैं।

प्रस्तुत विनिबंध के लेखक **अर्जुन देव मजबूर** ने परम्परागत भारतीय दृष्टि, मनीषा और शान्ति तथा सहिष्णुता के क्षेत्र में कृष्ण राज़दान के कृतित्व एवं उनके योगदान की विशेष चर्चा की है। यह विनिबंध साम्प्रदायिक सद्भाव और शाश्वत मानव मूल्यों को सुरक्षित और संवर्धित करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण पहल करेगा, ऐसी आशा की जा सकती है।

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15-00

कृष्ण राज़दान

अर्जुन देव मजबूर



भारतीय
साहित्य के
निर्माता